मूल्य : दस रुपये (10.00)

प्रथम संस्करण 1978, © संतोष शैलजा
ANGARON MEN PHOOL (Novel), by Santosh Shailja

संतोष शैलजा

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

श्री जे. नागरहट्टा, श्री रामचन्द्र शर्मा
श्री हरिशंकर शर्मा [illegible]
श्री [illegible]
द्वारा [illegible]

डूबते सूर्य की सुनहरी किरणें पूना-नगर से विदा ले रही थीं। किन्तु सूर्यास्त वेला में सदा जो मन्त्र-ध्वनि मन्दिरों तथा घरों से [illegible] करती थी, आज वह मूक थी। चारों ओर भीषण निस्तब्धता छाई हुई थी। कभी-कभी किसी महिला या बच्चे का आर्तनाद सुनाई दे जाता! सन्नाटे को चीरती वह व्याकुल पुकार वायु को भी कंपा जाती। नगर में प्लेग का प्रकोप था। सड़कों, गलियों और घरों में रोगियों के करुण दृश्य दिखाई दे रहे थे!

एक युवक तेज कदमों से सड़क पर जा रहा था। उसका चन्दन-चर्चित मस्तक व धोती कुर्ते का शुभ्र वेश उसके ब्राह्मण होने का प्रमाण था। चलते-चलते कई बार उसके कदम रुक जाते। चारों ओर के करुण दृश्य उसके मुख पर पीड़ा व आक्रोश के भाव ले आते। सहसा एक ओर से 'बचाओ! बचाओ!!' की पुकार आई। युवक लपककर उस दिशा की ओर बढ़ा।

एक बड़े मकान को अंग्रेज पुलिस ने चारों ओर से घेर रखा था। कुछ सिपाही मकान के भीतरी कमरों में घुसे थे। वहीं से यह आर्तनाद आ रहा था। युवक समझ गया कि यहां भी कोई प्लेग का रोगी है और मकान खाली करवाने के बहाने पुलिस घर के सदस्यों को अपमानित कर रही है! उसने आव देखा न ताव—एक छलांग में पुलिस का घेरा तोड़ मकान के अन्दर जा पहुंचा। अन्दर का दृश्य इतना दारुण था कि उसका हृदय कांप उठा। पुलिस के सिपाही बूटों [illegible] पूजा-गृह तक जा पहुंचे थे। घर की महिलाएं उन्हें रोकने आगे [illegible] कि सिपाहियों ने उन्हें बांहों से खींचकर एक ओर कर दिया। [illegible] पूजा मूर्ति हाथ में लेकर वहीं बैठ गई, तो व्यंग्य से अट्टहास [illegible] एक सिपाही ने अपना बूट उसके हाथ पर रख दिया। [illegible] से रहा न गया। उधर से गृहस्वामी ने आगे बढ़ गृहिणी को [illegible] इधर युवक ने अपने लोह-हाथों से उस सिपाही को [illegible] और [illegible]

की गति से बाहर ला पटका।

इससे पहले कि पुलिस के हाथ उस युवक तक पहुचे, भीड से एक अन्य युवक लपका और उसे खीचकर भीड मे ही कही गुम हो गया। यह सब पलक झपकते ही हो गया। जब तक पूरी बात समझ में आई, वे दोनो कही और पहुंच चुके थे।

"दामोदर! यह क्या पागलपन कर रहे थे?" सुरक्षित स्थान पर पहुचते ही पकडकर लाने वाला युवक दूसरे से बोला।

अब दामोदर ने अपने मित्र रानाडे की ओर देखा, परन्तु वह इतने क्रोध मे था कि कुछ बोल न सका। होठ फडककर रह गए। अंगार बरसाते नेत्र अन्तर् की ज्वाला के साक्षी थे। रानाडे उसके उग्र स्वभाव से खूब परिचित था। परन्तु उसे यह भी पता था कि आज यदि वह पुलिस के हाथ पड जाता, तो अज्ञात समय के लिए जेल मे ठूसा जाना था। उन दिनो लागू किए गए विशेष कानून के अनुसार सरकार प्लेग से बचाव के लिए किसी भी व्यक्ति को नजरबन्द कर सकती थी और उसके लिए अदालत के भी सब द्वार बन्द होते थे।

दामोदर का हाथ कसकर पकड रानाडे उसे घर की ओर ले चला और बोला, "मित्र! मैं जानता हू कि इस समय तुम्हारे हृदय मे तूफान उठ रहा है। पर आज तुम्हारे ही नही, पूना के हर व्यक्ति के हृदय मे वही तूफान है। मानव तो क्या, नगर की निर्जीव दीवारे भी इस अत्याचारी रैंड के हाथो कराह उठी है। परन्तु हमारे हाथ-पाव बन्दी है। दासता की जंजीरो मे जकडे हम क्या कर सकते है?"

"क्यों नही कुछ कर सकते! हम इस रैंडशाही को खत्म करके रहेगे।" दामोदर का हृदय गर्जना कर उठा।

उसे घर पहुचाकर रानाडे लौट गया। दामोदर ने आगन मे कदम रखा, तब उसकी मा संध्या-दीप जलाने तुलसी के बिरवे के पास खड़ी थी। दामोदर ठिठक गया। मां के बन्द नेत्रो से अविरल अश्रुधारा बह रही थी। अस्फुट स्वरो मे वह कह रही थी, "मैया! कब दया-दृष्टि करोगी? तुम्हारी संतान आज सिसक रही है।

अत्याचारी के हाथों उसकी रक्षा कौन करेगा ?..."

दामोदर से और न सुना गया। उसे लगा मानो मां के शब्दों में 'भारत मां' व्यथा से पुकार रही हो। अस्थिर कदमों से वह अपने कमरे की ओर बढ़ गया। कमरे में पहुंच वह विचारमग्न बैठ गया। बहुत समय बीत जाने पर उसकी पत्नी भोजन के लिए बुलाने आई पर उसने जाने से इन्कार कर दिया। तब मां आई। "दामोदर ! क्या बात है ? खाना क्यों नहीं खाया ?" मां ने उसके माथे पर हाथ फेरते हुए पूछा।

दामोदर बोल, "मां ! दासता में रहते हुए हमारा खाना-पीना सब निरर्थक है। ऐसे अपमानित जीवन को लम्बा करने से क्या लाभ ?"

बेटे के स्वर की वेदना ने मां का हृदय छू लिया। वह समझ गई कि नगर की दुर्दशा ने उसको व्याकुल कर दिया है। बोली, "पर क्या अनशन करके भूखों मरने से दास्ता की जंजीरें टूट जाएंगी ?"

मां के प्रश्न की मार्मिकता से चौंककर दामोदर ने सिर ऊंचा कर उसे देखा। मां की आंखों में प्रताड़ना व तेजस्विता झलक रही थी। वह फिर कहने लगी, "बेटा ! तुम सदा गणेश-उत्सव और शिवाजी-उत्सव मनाया करते हो। क्या शिवाजी ने यों ही बैठे-बैठे अनशन कर आजादी पा ली थी ? आजादी के लिए तो हमें शिवाजी की तरह कमर कसकर भयानक कार्य में जुटना होगा !"

"अब यही होगा मा !" दामोदर की आंखों से निराशा का कुहरा हट गया। उसे अपना लक्ष्य साफ नजर आने लगा।

रात के काले परदे ने सबको अपनी छत्रछाया में लेकर सुला दिया। परन्तु दामोदर की आंखों में नींद न थी। आज संध्या की घटनाएं उसके मानस-पटल पर आ-जा रही थीं। मन में उथल-पुथल मची थी। उसे याद आ रहा था 17 फरवरी, 1897 का वह अभागा दिन, जब प्लेग-अधिकारी के रूप में कुख्यात अंग्रेज मि० रैंड पूना में पहुंचा था। उस दिन के बाद किसी भी नागरिक का मकान, सम्पत्ति, धर्म या मान सुरक्षित न रहा था। एक ओर प्लेग-रोग का ज़ोर था,

दूसरी ओर रैंड का अत्याचार। प्लेग रोगी का सन्देह होते ही अंग्रेज सैनिक मनमानी करते हुए उस मकान को आग लगा देते, बहुमूल्य सामान लूट लेते और घर के सदस्यों का अपमान करते। इसके विरुद्ध कोई आवाज न उठा सकता था क्योंकि एक विशेष 'बिल' पास हो चुका था जिसके अनुसार सब नागरिक-अधिकार सरकार के हाथों में थे।

'यह रैंडशाही खत्म करनी होगी'—दामोदर होंठों में बुदबुदाया 'लेकिन कैसे?' परेशान-सा वह उठ खड़ा हुआ। लैम्प जला दिया। देखा, घड़ी चार बजा रही थी। सारी रात इसी उधेड़बुन में बीत गई थी, परन्तु अभी तक उसे कोई मार्ग न सूझा था। व्याकुलता से उसने चारों ओर देखा, उसकी आंखें सामने दीवार पर लगे शिवाजी के चित्र पर टिक गईं। कितनी ही देर वह मराठा सूर्य छत्रपति के चित्र पर आंखें गड़ाए रहा। उसे लगा मानो चित्र कह रहा हो—'उठो, साहसिक कार्य में जुट जाओ!'

उसी क्षण उसे कल के 'शिवाजी उत्सव' में सुने लोकमान्य तिलक के ये शब्द याद आए—'क्या शिवाजी ने अफजल खां को मार कर कोई पाप किया था? इसका उत्तर गीता में है। यदि चोर हमारे घर में घुस आए और हममें उसे पकड़ने की शक्ति न हो, तो हमें चाहिए कि बाहर से द्वार बन्द कर चोर को जीवित जला डालें—यही नीति है।'

"मिल गया···मिल गया! बस, अब मुझे मार्ग मिल गया···" कहते हुए दामोदर हर्ष से पागल हो उठा। रात के अन्धेरे के साथ ही उसकी निराशा विदा ले रही थी। भागते हुए वह दूसरे कमरे में गया और अपने छोटे भाई बालकृष्ण को जगा दिया—"बालकृष्ण! बालकृष्ण! उठो, हमें अभी जाना है।"

"कहां?" आंखें मलते हुए बालकृष्ण ने उठते हुए प्रश्न किया।

"गुरुदेव के पास!" दामोदर के उत्तर से बालकृष्ण की उत्सुकता अधिक गहरी हो गई। उसने देखा घड़ी सवा चार बजा रही थी, पर भैया का चेहरा उत्साह से दमक रहा था। उसकी उत्सुकता भापकर

दामोदर बोला, "कुछ विशेष काम है। रास्ते में सब कुछ बताऊंगा। पहले तैयार हो लो।"

बालकृष्ण ने फिर कुछ न पूछा। दामोदर की रात्रि-जागरण से उनींदी लाल आँखें और 'गुरुदेव' से मिलने का विशेष उत्साह देखकर वह समझ गया कि आज 'भैया' कुछ विशेष कार्य की योजना बना रहे हैं।

'गुरुदेव' का सम्बोधन लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के लिए था। 'तिलक' उस समय तरुण-श्रद्धा के पात्र बन चुके थे। उन दिनों पूना की सम्पूर्ण राष्ट्रीय गतिविधियों के पीछे तिलक के व्यक्तित्व की प्रेरणा थी। उनका प्रभावशाली मुखमण्डल, असीम विद्वत्ता, देशवासियों के लिए सच्ची सहानुभूति और स्वराज्य के लिए ज्वलन्त तड़प—इन विशेषताओं ने युवकों पर मोहिनी डाल दी थी। तिलक युवक-हृदय-सम्राट बन चुके थे। उन्होंने उन्हें अपना 'गुरुदेव' मान मार्गदर्शक बना लिया था। तिलक की सुप्रसिद्ध पत्रिकाएं 'मराठा' और 'केसरी' महाराष्ट्र की आवाज बनकर स्वतन्त्रता की चिन्गारी सुलगा रही थीं। चाहे ब्रिटिश सरकार की टेढ़ी आख उनपर पड़ चुकी थी, फिर भी तिलक की निर्भीक वाणी को बन्द करना सरकार के वश में न था!

दामोदर व बालकृष्ण चाफेकर से तिलक का विशेष स्नेह था, क्योंकि इनकी तेजस्वी आकृति तथा प्रखर देशप्रेम की भावना उनकी भावनाओं से मेल खाती थी। दामोदर 'चाफेकर भाइयों' में सबसे बड़ा था। वह 27 वर्ष का था। बालकृष्ण 24 का और वासुदेव 18 का। बचपन से ही दामोदर की रुचि सेना में भरती होने की थी। उसे व्यायाम व शस्त्र चलाने का बड़ा शौक था। उसने सेना में भर्ती होने का भरसक यत्न किया, परन्तु अंग्रेज सरकार तो मराठा ब्राह्मणों की छाया से भी डरती थी। तिलक ने भी दामोदर के लिए बहुत प्रयत्न किया, परन्तु दामोदर को सेना में न लिया गया। सभवतः उसकी उग्र देशभक्ति की भनक सरकार के कानों में पड़ चुकी थी।

हताश दामोदर पिता के पैतृक धार्मिक कार्य में हाथ बटाने लगा।

परन्तु वह चुप बैठने वाला न था। उसने युवकों के लिए 'हिन्दू संरक्षिणी सभा' और 'चाफेकर क्लब' नामक संस्थाएं आरंभ कर दी। इनमें व्यायाम और शारीरिक-प्रशिक्षण के साथ-साथ राष्ट्र-जागरण के कार्यक्रम चलते रहते। कभी 'शिवाजी उत्सव' कभी 'गणेश-उत्सव' के माध्यम से तरुण एकत्रित होते और ओजस्वी नाटक-गान आदि कार्यक्रम होते। 'चाफेकर क्लब' युवकों मे बहुत लोकप्रिय हो चुका था। निस्सन्देह, इसमें परोक्ष मार्गदर्शन तो तिलक का ही था जो तरुणो के प्रिय 'गुरुदेव' कहलाते थे।

दामोदर व बालकृष्ण सीधे केसरी कार्यालय पहुंचे। परन्तु वहा तिलक न मिले। पता चला कि वे पहले से ही 'चाफेकर क्लब' पहुंच चुके है। दोनो लम्बे-लम्बे डग भरते हुए क्लब की ओर बढ़े! क्लब एक बड़े कमरे मे था, जिसके सामने खुला मैदान था। कमरे मे ही कार्यालय था, जहा क्लब की बैठके होती थीं। भीतर प्रवेश करते ही सामने लगे भव्य चित्रो पर नेत्र टिक जाते। एक ओर छत्रपति शिवाजी का चित्र था—एक हाथ मे खिंची खड्ग और दूसरे में केसरिया ध्वज! दूसरी ओर वीरागना लक्ष्मीबाई का चित्र था—दांतों में घोड़े की लगाम दबाए और दोनो हाथो मे दो तलवारें लिए रणचंडी-सी युद्ध-भूमि में खड़ी थी। एक और चित्र था—महाराणा प्रताप का—जिनका विशाल वक्ष कवच व तेजस्वी भाल शिरस्त्राण से सज्जित था। ओजस्वी नेत्रों से मानो तेज झर रहा था। दूसरी ओर नर-केसरी गुरु गोविन्दसिंह खड़े थे—अपने हाथो अपने चारो लाल देश-धर्म की भेंट चढ़ाते हुए! इन सबके बीच खड़े थे—समर्थ रामदास! भव्य गभीर मुखमुद्रा, उनका उठा हुआ हाथ मानो आदेश दे रहा था—"उत्तिष्ठ, जाग्रत!"

अन्दर प्रवेश करते ही उन्होंने अभिवादन किया, "प्रणाम, गुरुदेव!"

"यशस्वी हो।" शब्दों के साथ मुस्कराकर तिलक ने उनकी ओर देखा। "लगता है, रात्रि-जागरण किया है···?" उनके नेत्र दामोदर की लाल आंखों पर लगे थे।

"गुरुदेव! कल सायकाल की घटना के बाद मैं सो न पाया···"

दामोदर बोल पड़ा।

"मैंने अभी-अभी रानाडे से सब सुन लिया है।"

"तो फिर अब हमें क्या आदेश है? यह रैंडशाही अब और बर्दाश्त नहीं होती।" दामोदर उत्तेजित हो उठा।

"निस्सन्देह! अब इसे अधिक सहन करना इस अत्याचार को बढ़ावा देना है।" तिलक का गंभीर स्वर गूंज उठा।

इससे प्रोत्साहित होकर बालकृष्ण बोला, "यह हमारे चुप रहने का ही परिणाम है कि रैंड के सिपाही अब हमारे घरों में जा पहुंचे हैं..."

अब रानाडे भी चुप न रह सका। बोला, "इतना ही नहीं बल्कि हमारे घरों की महिलाओं पर भी अत्याचार करने में आनन्द लेने लगे हैं..."

इतना सुनना था कि दामोदर का चेहरा रक्तवर्ण हो गया। उसे अपने कानों में उस सिपाही का अट्टहास सुनाई दिया और आंखों के आगे महिला की हथेली पर रखा अंग्रेज-सिपाही का बूट दिखाई दिया। उसे लगा मानो उत्तेजना से उसकी रक्त-शिराएं फट जाएंगी। वह उठ खड़ा हुआ और बोला, "गुरुदेव! मेरा तो प्रण है कि तब तक चैन से न बैठूंगा, जब तक उस नर-पिशाच रैंड को ठिकाने न लगा दूं।"

दामोदर का उग्र स्वर सुनकर व उसकी आकृति देख सब स्तब्ध रह गए। उसके शब्दों में छुपे अर्थ और उसे पूरा करने की सामर्थ्य किसीसे छुपी न थी। तिलक की आंखों में भी चमक आ गई। दामोदर की यही प्रचंड निर्भीकता उन्हें प्रिय थी।

उसकी पीठ पर हाथ रख उसे बैठाते हुए वे बोले, "दामोदर! तुम युवकों का रक्त इस तरह खौलना ही चाहिए। लेकिन..." कुछ ताड़ना-सी देते हुए बोले, "मुझे शंका है कि कहीं तुम भी मंगल पांडे की तरह 1857 की क्रान्ति के असफल सूत्रधार न बन जाओ..."

तिलक का संकेत समझ दामोदर का चेहरा कुछ मुरझा गया। बोला, "आपको मुझपर विश्वास नहीं?"

"प्रश्न विश्वास का नहीं दामोदर! प्रश्न है—स्थिति की विकटता

और अपनी तैयारी का ! तुम्हें मालूम है कि जिस नरपिशाच से तुम टकराना चाहते हो, उसके पीछे आज सारी सरकारी ताकत है—कुशल सेना, चतुर गुप्तचर और कानून।"

तिलक के कथन की गंभीरता समझकर सब मौन रह गए। कुछ देर बाद तिलक फिर बोले, "किन्तु, इतना हताश होने का भी कोई कारण नहीं। हां, आवश्यकता है—असीम साधन जुटाने की और शिवा जैसी नीति की।"

इतना कहकर वे जाने को उठ खड़े हुए। अन्य युवक भी खड़े हो गए। परन्तु दामोदर उनका मार्ग रोककर खड़ा हो गया। "गुरुदेव ! कोई मार्ग बताकर जाइए ! यह सब चुपचाप देखते जाना अब सहा नहीं जाता !"

तिलक ने उसकी ओर देखा—युवा मुखमंडल असीम वेदना का मूर्त रूप बना था। स्नेह से उसके माथे पर हाथ रख बोले, "चुप मत बैठे रहो। अपने साहस व नीति से कुछ करो। अभी छोटे-छोटे कार्यों में अपना शौर्य प्रकट करो। समय आ रहा है—जब वह बड़ा कार्य भी इन्हीं हाथों से होगा।"

इतना कहकर तिलक चले गए, लेकिन एक दिशा दे गए। दामोदर के कुशल मस्तिष्क ने मित्रों के साथ बैठ उसी समय एक योजना बना डाली।

जब तक दामोदर व बालकृष्ण क्लब से लौटे, तब तक खूब दिन निकल चुका था। उनके पिता श्री हरिपंत चाफेकर स्नानादि कर कहीं जाने को तैयार थे। वे महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध कीर्तनकार पुरोहित थे। स्वभाव से अत्यन्त नम्र व विश्वास में दृढ़ ! संकीर्तन-उत्सवों में वे अपने साथ दामोदर व बालकृष्ण को भी ले जाते। यद्यपि वे जानते थे कि दोनों पुत्रों की जन्मजात रुचि क्षात्र-कर्मों की ओर थी, तो भी पिता के आग्रह को वे न टालते। जब पिता मधुर कंठ से भाव-विभोर होकर कीर्तन करते, तब दोनों भाइयों के सधे हुए हाथ वाद्य-संगीत

बजाकर अद्‌भुत समां बांध देते।

आज दामोदर अत्यन्त प्रसन्न था। कल की निराशा के बादल छंट जाने से उसका मन निरभ्र गगन समान शांत व निर्मल था, पिता के साथ चलते हुए वह मन ही मन आज सुबह की बैठक की बातें दुहरा रहा था। उसका गतिशील मस्तिष्क भावी योजना में व्यस्त था, तभी सामने से आवाज आई, "दामोदर पंडित!"

आवाज इतनी तीखी व व्यंग्ययुक्त थी कि तीनों ही चौंक पड़े। दामोदर ने सामने से आ रहे दोनों व्यक्तियों को पहचान लिया और पहचानते ही उसका अणु-अणु क्रोध व घृणा से सुलग उठा। वे दोनों कभी उसके मित्र रह चुके थे। पर अब तो वे पूरी तरह 'काले साहब' बन चुके थे। उन्होंने ईसाई-धर्म की दीक्षा ले ली थी और अब उनके नाम थे—थोरट और वेलिंकर!

निकट आकर वे रुके, "कहिए, पंडित जी! सुबह-सुबह साज-बाज लिए, कहां चल दिए?" उनका प्रत्येक शब्द विष-बुझे तीर के समान था। दामोदर भी कम उग्र न था, छूटते ही बोला, "हम वहीं जा रहे हैं, जहां कल तक आप भी अपने पूर्वजों की तरह माथा झुकाया करते थे। लेकिन आप कहां से झख मारकर आ रहे हैं?"

दामोदर के व्यंग्य को अनसुना करते हुए दोनों ने गर्वोन्नत स्वर से उत्तर दिया, "संडे-सर्विस एटेंड करके आ रहे हैं।"

इतना सुनना था कि दामोदर बेतहाशा हंसने लगा। बालकृष्ण भी हंसी न रोक पाया। उन दोनों मित्रों के चेहरे देखने लायक थे। कुछ रुककर दामोदर उनके तमतमाए चेहरों को देखते हुए कह उठा, "बुरा मत मानना, भई! बात यह है कि 'संडे सर्विस' नाम से मुझे एक दूसरा नाम याद आ गया जो इससे ज्यादा रोचक है।"

उनके "क्या" के उत्तर में "अगली बार"—कहकर वे तीनों आगे बढ़ गए। पिता के शांत मुखमंडल पर आक्रोश की रेखाएं देख दामोदर बोला, "पिता जी! देखा आपने इन रंगे सियारों को! 'संडे-सर्विस' का ठीक अर्थ अब इन्हें जल्दी ही समझाना पड़ेगा।"

पिता कुछ न बोले। पर बालकृष्ण चुप न रह सका। बोला,

"कैसे, भैया ?"

"डडे-सर्विस से ।" कहते हुए दामोदर ने जो मुह बनाया, तो दोनों फिर जोरो से हंस पडे ! उन्हें हंसता देख पिता भी मन्द-मन्द मुस्कराने लगे ।

उसी दिन सायकाल थोरट और वेलिकर टहलते-टहलते जा रहे थे । सडक की बतिया अभी जली न थी । सध्या का झुटपुट छा रहा था । दोनो बातों मे मग्न थे । तभी झपाटे से एक साइकिल पीछे से आई । उसपर दो युवक सवार थे । ज्यों ही साइकिल उनके निकट पहुची, एकदम सन्तुलन बिगडा और दोनो साइकिल सवार थोरट व वेलिकर के ऊपर लुढक पडे । चारो धूल चाटने लगे । एक ओर दोनों युवक, दूसरी ओर थोरट-वेलिकर, और बीच मे पहिये उठाए हुए खडी साइकिल ने मानो लडाई के लिए हरी झंडी का काम किया ।

धूल झाडकर उठते ही थोरट और वेलिकर चिल्ला उठे, "यू इडियट इडियन ! रास्कल ! अन्धे होकर चलाते···"

अगले शब्द सुनने की ताब किसमे थी ? दोनो साइकिल-सवार उनपर टूट पडे । थोरट व वेलिकर इस आकस्मिक हमले के लिए तैयार न थे । फिर भी भरसक मुकाबला करने लगे । परन्तु इनके दुबले साहबी शरीर उनके हृष्ट-पुष्ट बदन का कब तक मुकाबला करते ! खासकर एक युवक का डीलडौल तो इतना लबा-चौड़ा था कि उसके दो ही मुक्कों से थोरट की आंखो के आगे सितारे नाचने लगे । कुछ ही देर के मुकाबले के बाद थोरट व वेलिकर धराशायी हो गए । तब दोनो युवक रुके, देखा—सामने विचित्र दृश्य था—थोरट की नेकटाई सड़क पर झाड़ू का काम दे रही थी । वेलिकर की पैंट मुह फाड़कर मानो अपनी दुर्दशा का रोना रो रही थी । दोनो अधमरे से पड़े थे ।

उपेक्षा से उन्हें देखकर वे जाते हुए बोले, "खबरदार ! जो फिर कभी 'इडियन' को गाली दी । अभी हिन्दू-रक्त मे इतना बल है कि तुम्हारी गाली का जवाब मुक्के मे दे सकें । नये-नये मुर्गे ज्यादा ही ऊची बाग देने लगे है···तुम सरीखे धर्म-भ्रष्टो को तो चुल्लू भर पानी

में डूब मरना चाहिए।"

"वासुदेव ! वासुदेव !" आवाज सुनकर ज्यों ही वासुदेव ने द्वार खोला, तो चौंककर पीछे हट गया ! "आप···कौन ?"

प्रत्युत्तर में आगन्तुक ठहाका लगा उठे। हंसी सुपरिचित थी। अब वासुदेव ने अपने भाइयों को पहचाना। दामोदर व बालकृष्ण वेशभूषा और आवाज बदल लेने में बहुत कुशल थे।

वासुदेव को विस्मित देख दामोदर बोला, "क्यों, पहचाना नहीं तुमने भी ? वाह ! आज तुम भी मात खा गए।" दामोदर ने एक और ठहाका लगाया। वह आंगन पार कर भीतर की ओर चला, तो बालकृष्ण व वासुदेव पीछे थे।

वासुदेव की उत्सुकता अब मूक न रह सकी, "भैया ! आज और किसको मात दी है ? कहां से आ रहे हो ?"

उत्तर देते समय दामोदर फिर हंस पड़ा, "आज मडे-र्सविस की डडे-र्सविस करके आ रहा हूं।"

"वह कैसे ?" वासुदेव का किशोर मन अभी भी समझ न पाया था। उसके चेहरे पर प्रश्न चिह्न बना देख बालकृष्ण ने स्पष्ट किया, "अरे, वो थोरट-वेलिकर नामक नये-नये ईसाई बने हैं न···आज उन्हीं-की मरम्मत की है···"

"मरम्मत नहीं, शुद्धि कहो शुद्धि ! अब 'इंडियन' को गाली देने से पहले उन्हें दस बार अपने दुखते अंग सहलाने पड़ेंगे !"

"वाह ! भैया ! आज तो मजा आ गया।" हर्ष से उछलकर वासुदेव भैया से लिपटने लगा, परन्तु दामोदर तुरन्त दूर छिटक गया—"अरे ठहर ! मुझे छूना नहीं ! पहले उस मलेच्छ की छूत तो उतार लूं···छि !" और वह भागकर स्नानागार में घुस गया।

वासुदेव अभी अठारह वर्षीय किशोर ही था। परन्तु क्लब का सक्रिय सदस्य होने से उसके विचार काफी परिपक्व हो चुके थे। दो ईसाइयों के भैया के हाथों पिटने की कल्पना ने उसके किशोर मन को

गुदगुदी से भर दिया। उमंग से भरकर वह बोला, "सच्च ! क्या मजेदार दृश्य रहा होगा। लेकिन मुझे साथ क्यों न ले लिया ? इस पुण्य-कार्य में मेरा भी हाथ लग जाता जरा !"

उसके उत्साह से दमकते चेहरे पर स्नेह-भरी दृष्टि डाल बालकृष्ण बोला, "तू जरा बड़ा तो हो ले, फिर ऐसे पुण्य-कार्यों में तेरा भी हिस्सा होगा।"

"हां, थोड़ा-सा पुण्य-फल तो तू अब भी ले सकता है।" दामोदर ने स्नानागार से बाहर आकर कहा।

"कैसे, भैया ?"

"इस विराट देह के पोषण के लिए भोजन-सामग्री लाकर !" कहते-कहते दामोदर ने अपने पेट की ओर संकेत किया। अब तो तीनों के ठहाके से घर गूंज उठा। और रसोईघर से मां व बहुओं को भी बाहर आकर झांकना पड़ा।

प्रतिदिन की तरह अगली संध्या को जब चाफेकर-बन्धु क्लब पहुंचे, तो सब युवक एक समाचारपत्र को घेरकर पढ़ रहे थे। उनके चेहरे उत्तेजित थे। वे तीनों भाई उत्सुकता से पास जा खड़े हुए। "कोई विशेष समाचार है ?"

दामोदर की आवाज सुन सबने आंखें उठाईं और खुशी से चिल्ला पड़े—"दामोदर ! आज तो कमाल की खबर है। लो पढ़ो, तुम भी। पढ़ते ही एक पाव खून एकदम बढ़ जाएगा।"

समाचारपत्र हाथों में लेकर दामोदर ने पढ़ा, *"कल सायंकाल पूना के दो सम्भ्रान्त ईसाइयों की किन्हीं अज्ञात व्यक्तियों द्वारा* निर्दयता से पिटाई की गई। अपराधी फरार।…पुलिस सरगर्मी से खोज कर रही है।"

समाचार खत्म करते ही दामोदर का ठहाका गूंज उठा। उसकी हंसी की छूत सबको लगी और सब खिलखिला उठे।

रानाडे कह उठा, "मित्र ! जी चाहता है कि वे अज्ञात दोस्त कहीं

मिल जाएं, तो उनका शानदार स्वागत करें।"

इसपर कौतुक से मुस्कराते हुए बालकृष्ण बोला, "तो फिर देरी कैसी? तुम स्वागत की तैयारी करो। मैं अभी उन्हें पकड़कर लाता हूं।

"तुम उन्हें जानते हो?" सबकी आंखें विस्मय से फैल गई।

उत्तर देने से पहले बालकृष्ण ने इधर-उधर नजर दौड़ाई। कहीं कोई अपरिचित न था, सब क्लब के विश्वसनीय सदस्य थे। वह धीरे से बोला, "वे अज्ञात व्यक्ति थे—दामोदर और बालकृष्ण।"

"सच!" सब हर्ष से पागल हो उठे। "अरे जियो, दोस्त! तुमने तो क्लब का नाम रोशन कर दिया।" हर्षोन्मत्त युवकों ने दामोदर व बालकृष्ण को कंधों पर उठा लिया और लगे नाचने-कूदने! आज उनके उल्लास की सीमा न थी।

थोड़ी देर बाद जब उल्लास का ज्वार धीमा पड़ा, तो सब घर लौटे। रानाडे दामोदर के साथ हो लिया। मार्ग में वह पूछ उठा, "अब आगे?"

दामोदर ने उत्तर दिया, "हां, अब आगे की सोचो। यह तो योजना का श्रीगणेश हुआ।"

रानाडे कुछ क्षण चुप रहा। पर उसका मस्तिष्क बड़ी तेजी से काम कर रहा था। अचानक वह उछल पड़ा, "दामोदर! एक बात सूझी है! आज यहां यूनिवर्सिटी-पंडाल में विशेष समारोह होने वाला है। उसमें अनेक अंग्रेज अधिकारियों के साथ प्रमुख सुधारवादी वसुदेव-राव पटवर्धन, दमुन्ना कुलकर्णी आदि भी भाषण देने वाले हैं। चलो, आज उधर ही चलें।"

यह सुनते ही दामोदर की आंख चमक उठी। बोला, "अवश्य चलेंगे।"

पूना नगर अपने सांस्कृतिक कार्यक्रमों के लिए प्रसिद्ध था। प्रति-दिन वहां कोई न कोई उत्सव या जलसा होता रहता! कुछ उत्सव राष्ट्रीयता से प्रेरित होते, जैसे गणेश उत्सव या शिवाजी उत्सव। कुछ अंग्रेज-भक्त सुधारकों की ओर से किए जाते, जिनमें सरकारी शान-

शौकत के साथ अंग्रेज सभ्यता का जोर-शोर से प्रचार किया जाता। परन्तु इन दिनों प्लेग के प्रकोप ने इन उत्सवों के उत्साह पर भी पानी फेर दिया था। अतः युनिवर्सिटी-पंडाल में मनाया जाने वाला उत्सव नगर के कुछ गिने-चुने व्यक्तियों का ही उत्सव था। इसमें वे ही लोग आमंत्रित थे, जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अंग्रेजी सभ्यता व संस्कृति के भक्त थे। चतुर अंग्रेज अधिकारी ऐसे अवसरों की ताक में रहते, जब इन अंग्रेज-भक्त भारतीयों के ही मुंह से अपने ही देश व धर्म की छीछालेदार करवा के अंग्रेजी-शिक्षा का डंका पीटा जाता।

दामोदर व रानाडे को उस उत्सव में प्रवेश मिलना कठिन था। पर उनके एक चतुर मित्र 'भिड़े' की सहायता से यह काम हो गया। भिड़े एक अद्भुत युवक था। प्रत्यक्ष व्यवहार में वह एक आधुनिक सुधारवादी लगता, परन्तु वास्तव में वह इसके विपरीत था। आधुनिक सुधारक उसे अपना मित्र समझते, क्योंकि जब कभी अवसर मिलता, वह अपनी लच्छेदार भाषा में अंग्रेजी शिक्षा व संस्कृति का गुणगान किए बिना न रहता। जब कोई अंग्रेज सामने होता, तब तो उसकी जिह्वा उनकी प्रशंसा में धरती आकाश एक कर देती। उस समय तो संभवतः आकाशवासी विधाता भी उसे इंग्लैंड में जन्म न देने की अपनी भयंकर भूल पर पछताने लगते। परन्तु भिड़े का हृदय यदि कोई देखता, तो उसमें विदेशी-शासकों के प्रति छुपी असीम घृणा का ज्वालामुखी सुलगता दिखाई दे जाता। किन्तु इसका पता केवल गिने-चुने मित्रों को था। उनमें दामोदर आदि मुख्य थे।

भिड़े की पहुंच प्रत्येक सरकारी अधिकारी तक थी। इससे चाफेकर भाइयों को बहुत सहायता मिलती। आज के उत्सव में भी तभी वे प्रवेश पा सके थे।

उत्सव शुरू हुआ। कार्यक्रम के विविध रूप—कविता, गीत, भाषण सामने आने लगे। सबका एक ही अर्थ था—ब्रिटिश संस्कृति व शिक्षा की प्रशंसा के पुल बांधे जा रहे थे। थोड़ी ही देर में चारों मित्र उकता गए। दामोदर की उकताहट तो धैर्य की सीमा पार करने लगी। वे उठने को ही थे कि मंच से अगले वक्ता के नाम की घोषणा

हुई—'वासुदेव पटवर्धन !'

यह नाम सुनते ही उनके कदम रुक गए। दामोदर चौंककर उत्सुकता से मच की ओर देखने लगा। वासुदेव पटवर्धन उन व्यक्तियों का नेता था, जो अपनी सभ्यता व संस्कृति को सर्प की केंचुली समान उतारकर ब्रिटिश सभ्यता व संस्कृति को गले लगाने मे सबसे आगे थे। वह कहने लगा, "भाइयो और बहनो ! सबसे पहले तो हमें स्वयं को हार्दिक बधाई देनी चाहिए कि हमने भाग्य से नये युग मे जन्म लिया है। हम आभारी है इस ब्रिटिश सत्ता के, जिसने हमें अंधविश्वासों के अंधेरे से नई शिक्षा के उजाले में लाकर खडा कर दिया है। उसकी प्रशसा मैं किन शब्दो से करु ? फिर भी कुछ पुराणपंथी लोग नई सभ्यता का विरोध करते है। परन्तु ऐसा करके वे अपनी मूर्खता ही प्रकट करते है।

"सच पूछा जाए, तो प्राचीन सभ्यता में मूल्यवान है ही क्या ? समय के साथ वे सब बाते अब घिसी-पिटी हो गई है। उन्हे छोडकर नई बातो को अपनाना आज की नई पीढ़ी का कर्तव्य है। इस पुनरुत्थान के महान कार्य मे हमे ब्रिटिश सत्ता को पूरा सहयोग देकर अपना कर्तव्य निभाना चाहिए•••"

इससे अधिक सुनना दामोदर के लिए असह्य हो गया। वक्ता के शब्द पिघले शीशे की भांति कानो मे पडकर अन्तर् को चीर रहे थे। वश मे होता, तो वह अभी चीते-सी छलांग लगाकर मंच पर जा चढ़ता और वक्ता को गले से पकड़कर पूछता—'सात समुद्र पार से आए इन ब्रिटिश लुटेरों की प्रशसा करते तुम्हें लज्जा नही आती ? तुम्हारी आंखों के सामने उनके नृशंस-कृत्य हो रहे है•••तुम्हारे देशवासी प्लेग और सरकारी दमन की चक्की में असहाय पिस रहे है•••फिर भी क्रूर शासकों का गुणगान करते हो ? जिस भूमि पर मराठा-सूर्य शिवाजी ने अपने पराक्रम व नीति से हिन्दू-स्वराज्य की स्थापना की थी, उस भूमि को आज शत्रुओं के हाथ सौंपते हुए तुम्हारी अन्तरात्मा नहीं कांपती ?•••' परन्तु बन्दी सिंह-सा विवश दामोदर कुछ न कह सका। उस सभा मे आगे बढ़कर कुछ विरोध में कहना मानो मृत्यु

निमन्त्रण देना था। वह क्रोध में उफनता हुआ बाहर आ गया। पीछे-पीछे तीनों मित्र भी चले आए।

कुछ क्षण दामोदर खड़ा-खड़ा पंडाल की ओर घूरता रहा। उसकी मुखमुद्रा बहुत उग्र दिखाई दे रही थी। सहसा उसकी आंखों में चमक उभरी—हिंसक चमक! संकेत से दोनों मित्रों को पास बुला उसने कान में कुछ कहा। तुरन्त तीनों इधर-उधर चले गए। इसके आध घंटे बाद—पंडाल का एक सिरा लाल हुआ और फिर देखते ही देखते समूचा पंडाल चारों ओर से आग की लपटों में घिर गया!

जब आग धधक उठी, तब चीख-पुकार मचाने वालों में वे चारों भी शामिल हो गए। इतना ही नहीं, भिड़े व रानाडे तो मंच के पास पहुंचकर प्रतिष्ठित व्यक्तियों को बाहर निकालने में सहायता भी करने लगे। किन्तु दामोदर व बालकृष्ण तो मंच से दूर खड़े कौतुक-भरी नज़रों से यह सारा तमाशा देख रहे थे। हां, कभी-कभी वे भी तमाशाइयों की तरह 'पानी लाओ', 'इंजन बुलाओ' की आवाज लगाकर भाग-दौड़ करते। अच्छी-खासी भगदड़ मची थी। पर दामोदर का मन अभी न भरा था। वह चाहता था कि पटवर्धन जैसे अंग्रेज-पिट्ठुओं को कुछ 'यादगार इनाम' दिया जाए। इसी ताक में वह खड़ा था।

सौभाग्यवश उसे सुअवसर भी मिल गया। उसने देखा—पटवर्धन व कुलकर्णी धुंए के बीचोंबीच निकलने की कोशिश कर रहे थे। दोनों ने धुएं से बचने के लिए नाक व आंख पर रुमाल रखे हुए थे। दामोदर ने बालकृष्ण को चौकस रहने का इशारा किया और बिजली की गति से उन दोनों पर टूट पड़ा। वे दोनों घबरा गए। एक ओर आग व धुएं का प्रकोप, दूसरी ओर मुक्कों की प्रबल मार! इर्द-गिर्द लोग अपने-अपने प्राण बचाने भागे जा रहे थे। अतः इस शोरगुल की ओर किसीने खास ध्यान नहीं दिया। इससे पहले कि वे संभल पाते दामोदर के मुक्कों की मार ने उन्हें बेदम कर दिया। धुएं ने भी खूब सहायता की। वह उन्हें अधमरा-सा कर झटपट स्टेज के दूसरी ओर जा निकला। हां, जाने से पहले वह पटवर्धन के कान में यह कहना न भूला, "यह

है तुम्हारी अंग्रेज़-भक्ति का पुरस्कार !"

शीघ्र ही शेष तीनों साथी भी उससे आ मिले। परस्पर आंखें मिलते ही उनके चेहरों पर वही सन्तुष्ट मुस्कराहट आ गई, जो मन-भाता शिकार करने के बाद केसरी के चेहरे पर हुआ करती है।

अभी दामोदर व बालकृष्ण ने घर में पांव रखा ही था कि वासुदेव घबराया हुआ आ खड़ा हुआ, "भैया ! आपको पता है कि पुलिस ने क्लब के आफिस पर छापा मारा। सौभाग्य से उनके हाथ कुछ भी नहीं लगा। गुरुदेव ने पहले से ही वहां का महत्त्वपूर्ण सामान हटवा दिया था। परन्तु अभी भी हमें खतरा है। आपके लिए उन्होंने यह संदेश अभी-अभी भेजा है···" कहते हुए उसने एक पत्र दामोदर की ओर बढ़ाया।

दामोदर ने पढ़ा, 'तुरन्त पूना छोड़ दो। लगभग सप्ताह के लिए कहीं बाहर चले जाओ। पुलिस खोज में है।'

संक्षिप्त-सी सूचना थी पर उसके गूढ़ अर्थ को वे समझ गए। तिलक ही सब योजनाओं के सूत्रधार थे। उन्हें सब प्रकार की सूचना मिलती रहती थी। अतः उन्होंने तुरन्त नगर छोड़ देने का निर्णय कर लिया, क्योंकि ब्रिटिश जेल में बन्द हो जाने से उनकी भावी योजनाएं अधूरी रह जातीं।

'पर जाएं कहां ?' दोनों की आंखों में एक ही प्रश्न था। तभी भिडे व साठे भी आ पहुंचे। चारों मित्र बैठकर अटकलें लगाने लगे। रात आधी से अधिक बीत चुकी थी। उन्हें गुरुदेव के शब्द याद थे— 'तुरन्त पूना छोड़ दो' और अभी तक उनका गन्तव्य ही निश्चित न हो सका था।

सहसा भिड़े खुशी से उछल पड़ा, "लो, मुझे एक बढ़िया जगह सूझ गई।"

"कौन-सी ?" तीनों एक साथ बोल पड़े।

"बम्बई !" वह पूना के नज़दीक है इसलिए हमें वहां रहकर इधर की खबर भी मिलती रहेगी और उस महानगरी में हमारा कुछ पता भी न चल सकेगा।"

भिडे और साठे के साथ बन्द कमरे में विचार-विमर्श करते रहे, तो आखों-आत्नों में सास-बहुओं ने आने वाले समय की गम्भीरता को भांप लिया था। किन्तु स्थिति इतनी गम्भीर होगी, इसका पता तो तभी चला जब भोर के झुटपुटे में दोनों भाई एक थैला लिए विदा लेने आ खड़े हुए।

आशंकित चित्त से मां ने पूछा, "क्यों बेटा ! सुबह-सुबह ही किस यात्रा की तैयारी है ?"

सहज अट्टहास से कमरा गुंजाते हुए दामोदर ने उत्तर दिया, "मां ! पूना में जी उचाट हो गया है। सोचा, जरा बम्बई घूम आएं।"

मां और बेटे की बातचीत सुनकर राधिका और रुक्मिणी भी पास आ खड़ी हुई थीं। पिता उस समय स्नान कर रहे थे। इसलिए उनसे कुछ कहने से वे बच गए।

राधिका एक समर्पिता पत्नी थी। दामोदर के लिए उसका हृदय प्रतिक्षण वैसे ही उमड़ता रहता जैसे वह उसका पति नहीं, प्रेमी हो। शायद इसीलिए मां ने लाड से उसका नाम राधिका रख दिया था। परन्तु वाणी में वह मुखर न थी। उसके मन के बोल वाणी में नहीं, दो नेत्रों में ही प्रकट होते, जो बड़े-बड़े और भावपूर्ण थे। कभी-कभी मुग्ध हो दामोदर भी कह उठता था, "राधा ! तू मुंह से भले कुछ न कहे, पर तेरे ये नयन तो सब दिल की बात मुझसे कह देते हैं।"

रुक्मिणी भी इतनी मुखर तो न थी। फिर भी वह राधा से अधिक चुलबुली व चंचल थी। उसके होंठ सदा कुछ कहने को फड़कते रहते और नयन ? वे तो बिना पूछे ही अनगिनत बातें कह जाते।

आज इन्हीं नयनों से आखें चुराते हुए दामोदर और बालकृष्ण उनकी ओर पीठ किए खड़े थे। मां ने धमकाते हुए कहा, "कन्हैया ! सच बोल, कुछ उत्पात करने तो नहीं जा रहे ?"

प्रत्युत्तर में और ज़ोर-से हंसकर दामोदर व बालकृष्ण आगे बढ़े— मां के पांव छुए और इसी आधे पल में नीचे से प्रिया के आतुर नेत्रों से नेत्र मिला उन्हें आश्वस्त कर दिया। जाते-जाते दामोदर धीरे-से बोला, "देखना, हमारे बम्बई जाने की किसी को खबर न हो !" लम्बे-लम्बे

डग भरते हुए दोनों चल दिए, तो सास बहुओं के नेत्र मिले और तीनों समझ गई कि बम्बई यात्रा का कारण कोई मौज-मेला नहीं था। उसी क्षण उनके हृदयों से एक ही मंगल-कामना उठी—'पथ मंगलमय हो!'

बम्बई आए हुए उन्हें दो दिन हो गए थे। परन्तु वह ऐश्वर्य-भरी महानगरी उन्हें बांध न सकी थी। शरीर से भले ही वे वहां थे, पर मन तो हर समय पूना में ही रहता था। तीनों मित्र जब भी वार्तालाप करते, उनका विषय पूना की दुर्दशा ही होता। मन की आंखों में वे वहां हो रहे सब अत्याचारों को देख रहे थे। बम्बई में आकर उन्हें गोरी सत्ता के अधिक तीखे अनुभव हुए। उन्होंने देखा अंग्रेजों और अंग्रेज-पिट्ठुओं की गगनचुम्बी अट्टालिकाएं हैं, जहां वे ऐश्वर्य का जीवन बिताते हैं। जबकि लाखों लोग फुटपाथों और झुग्गियों में नारकीय जीवन जी रहे हैं! दोनों के जीने में ज़मीन-आसमान का अन्तर था। यह देख उनके हृदय तड़प उठते। दासता की इन जंजीरों को तोड़ने के लिए उनकी मुट्ठियां कस जातीं।

एक दिन सायंकाल इसी तरह घूमते हुए दामोदर उद्विग्न हो बोल उठा, "जी तो चाहता है कि इन ऊंचे-ऊंचे महलों को एक साथ आग लगा दूं।"

उसके स्वर में इतना क्रोध था कि दोनों साथी चौंककर उसकी ओर देखने लगे। साठे बहुत विनोदी स्वभाव का था। मुस्कराकर बोला, "मित्र! अगर तुम हमेशा माचिस की डिबिया लेकर घूमा करोगे, तो मुझे अपने साथ एक फायर-ब्रिगेड रखना पड़ेगा वरन् गोरी चमड़ी के साथ-साथ अपने काले चमड़े की भी ख़ैर नहीं।"

इसपर तीनों ज़ोर से हंस पड़े। इससे मन का अवसाद कुछ दूर हुआ। कुछ क्षण पश्चात् दामोदर बोला, "यहां रहना अब कठिन लग रहा है। मेरी इच्छा है अब पूना लौट चलें।"

"हां, यहां आए भी तो चार दिन हो चुके हैं…"

"नहीं, अभी नहीं।" साठे ने सतर्कता से बात काट दी। "याद करो, गुरुदेव ने सप्ताह भर बाहर ठहरने को लिखा था। इससे पहले वहां लौटने का अर्थ होगा—कैद होना। क्या तुम जेल जाना चाहते हो ?"

कैद होने की कल्पना से ही तीनों ऐसे चौंक उठे जैसे सांप पर पाव पड़ गया हो। पूना जाने का विचार छोड़ तीनों अनमने-से आगे चल दिए। यह नीरस सैर संभवतः और लम्बी हो जाती, अगर एक आनन्दमयी पुकार उन्हें रोक न लेती। तीनों की उत्सुक आंखें आवाज़ की दिशा में देखने लगीं। पुकारने वाला व्यक्ति अधेड़ आयु का था। उसके चेहरे पर अनुभव की परिपक्वता के साथ-साथ हास्य-विनोद का अद्भुत सगम दिखाई दे रहा था।

उन्हें पहचाना केवल दामोदर ने। वे उसके पिताजी के अभिन्न मित्र नारायणराव थे। "प्रणाम" कहते हुए उसने चरण छुए। तब बालकृष्ण और साठे ने भी प्रणाम किया।

स्नेहभरी थपकी पीठ पर देते हुए वे मुस्करा कर बोले, "यशस्वी बनो, बेटो ! इतने लम्बे-तडंग तीन बेटे एकाएक पाकर मैं तो एकदम धरती से आकाश में उड़ने लगा हूं।"

प्रत्युत्तर में तीनों सलज्ज हंस दिए। वे फिर बोले, "हां, तो दामोदर ! कहो कैसे आना हुआ ? घर में सब कुशल तो है ? मेरे मित्र कैसे हैं ? कब भेंट होगी उनसे ?"

दामोदर मुस्करा पड़ा, "ठहरिए आबा ! इतने प्रश्नों का उत्तर एक-एक करके दूंगा। हम यहां यों ही घूमने आए हैं। आपके मित्र सकुशल हैं। घर में भी सब कुशल है, लेकिन घर के बाहर कहीं भी कुशल नहीं…" अन्तिम शब्दों में उसका हृदय भर आया। आंखें भी नम हो गईं।

आबा के चेहरे से भी हंसी लुप्त हो गई। चिन्तातुर हो पूछ उठे, "क्यों, क्या हुआ दामोदर ? शीघ्र कहो।"

"आबा ! आपने 'केसरी' में पढ़ा तो होगा कि पूना प्लेग-अधिकारी रैंड के हवाले है। बस, तब से नगर में अत्याचार, लूट व कष्टों

की मानो आधी चल पड़ी है। यही समझिए कि पूना क्रूर दानव के हवाले है।" मि० रैंड का उल्लेख करते हुए दामोदर का सर्वांग घृणा से कांप उठा।

बाबा गंभीर हो गए। कुछ क्षण बाद वेदनापूर्ण स्वर में बोले, "दासता सबसे बड़ा अभिशाप है बेटा! जब तक यह राजरोग समूल नष्ट नहीं होता, तब तक सुख की आशा करना आकाश-कुसुम पाने के समान है।"

बातें करते-करते वे चौराहे तक आ पहुंचे थे। वे बोले, "अच्छा, तो अब घर चलो मेरे साथ। बहुत दिनों बाद अपने नगर के साथी मिले हैं।"

तीनों मित्र सहर्ष साथ चल पड़े। वास्तव में आज उन्हें परदेस में भी आत्मीय मिलने से अतीव प्रसन्नता हुई थी। घर पहुंचे तो द्वार पर ही गृहिणी ने मुस्कराहट से स्वागत किया।

"लो देखो, अपर्णा! आज की सैर कितनी सार्थक रही! तीन युवा बेटे साथ ले आया। है न भाग्यशाली दिन!"

"सो तो है ही! आओ, आओ बैठो!" बड़े स्नेह से अन्दर ले जाते हुए गृहिणी बोली।

कुछ ही देर बाद वह गरम चाय व मिष्टान्न ले आई। इस स्नेह-भरे वातावरण में तीनों मित्रों की चिन्ता व उदासी दूर हो गई। चाय पीते-पीते वे बातचीत करने लगे। तभी बाहर थपथपाहट हुई। नारायणराव जी के 'आइए' कहते ही एक अपरिचित व्यक्ति ने परिचित मुस्कान बिखेरते हुए प्रवेश किया।

"नमस्कार"—नारायणराव जी मुस्कराए। फिर उन तीनों का परिचय कराते हुए बोले,—"इनसे मिलिए मि० पटवर्धन, ये मेरे अभिन्न मित्र के सुपुत्र हैं—श्री दामोदर व बालकृष्ण चाफेकर। और ये···" अधूरे परिचय को पूरा करते हुए दामोदर बोला—"ये मेरे अभिन्न मित्र हैं—विनायक साठे।"

"वाह! यह भी खूब रही! मित्र और मित्रों के मित्र उपस्थित हैं—यानी मित्र-मण्डल।" मि० मूर्ति के साथ सब खिलखिला उठे।

"आबा जी, इनका परिचय सुनने को हम उत्सुक हैं…"

"अवश्य! ये—हैं मि० मूर्ति पटवर्धन, मेरे अभिन्न मित्र—यहाँ पर पुलिस-विभाग में उच्च अफसर हैं।"

'पुलिस विभाग में उच्च अफसर'—ये शब्द सुनते ही तीनों के कान खड़े हो गए।

"ये कहाँ से तशरीफ ला रहे हैं?" मि० मूर्ति के प्रश्न करने पर नारायणराव बोले—"ये पूना से आए हैं, शायद दो-चार दिन हुए होंगे।"

"पूना से…तीनों ही आए हैं।" मि० मूर्ति ने ये शब्द दोहराते हुए तीनों की ओर देखा तो उन्हें मानो बिजली का करंट-सा लगा। तुरन्त बात सँभालते हुए साठे बोल पड़ा, "जी नहीं। पूना से आए तो हमें लगभग एक महीना हो चुका है—पर रास्ते में कई जगह रुकते, पिकनिक मनाते हम हफ्ता पहले बम्बई पहुँचे हैं।"

"क्या काम करते हैं आप?" मि० मूर्ति ने दामोदर को पैनी दृष्टि से देखते हुए पूछा।

अब तक वह काफी सँभल चुका था। बोला, "हमारा काम वही समझिए जो दरबार में भाट किया करते हैं?"

"यानी?"

"भगवान के मन्दिर में कीर्तन-भजन। बस, फर्क इतना ही है कि भाट राजा की प्रशंसा करते हैं और हम राजाओं के राजा की!" इस रोचक तुलना पर सब हँस पड़े। कुछ क्षण पूर्व का तनाव ठहाकों में टूट गया।

अब मि० मूर्ति भी मूड में आ गए। बोले, "मि० दामोदर! कहाँ आपका डील-डौल और कहाँ कीर्तन का धंधा—कुछ जँचता नहीं।"

दामोदर ने ठंडी साँस ली,—"हाँ, साहब! है तो बात अफसोस की। पर करना क्या न करना!"

"क्यों? आपको तो मिलिट्री या पुलिस में शानदार काम मिल सकता था।"

"अजी, मिलिट्री या पुलिस में हम जैसे मामूली युवकों को कौन

पूछता है ? वहां तो बड़ों-बड़ों की पहुंच है।" कहकर दामोदर ने निराशा का भाव प्रकट किया।

मि० मूर्ति अब जोश में आ गए। बोले, "डांट वरी माइ व्वाय ! आई विल ट्राय फार यू !"

"जी, बहुत-बहुत शुक्रिया !" दामोदर कृतज्ञता से बोला।

अब तो मि० मूर्ति रंग में आ गए। एक के बाद एक अनेक किस्से सुनाने लगे। पुलिस-काल की कई घटनाएं मजे ले-लेकर सुना डालीं। लगभग एक घंटे बाद जब वे जाने को उठे, तो तीनों ने ईश्वर का धन्यवाद किया।

अब इन तीनों ने भी वहां से विदा ली। रास्ते में साठे ने मीठी चुटकी ली, "क्यों भई दामोदर ! खूब शाम कटी आज ! नये मित्र मिले और वह भी पुलिस अफसर ! अब तो तू भी जल्दी शानदार चास पा जाएगा। क्यों ?"

इसपर बुरा-सा मुंह बनाते हुए दामोदर ने उनकी पीठ पर एक मुक्का जमा दिया। "शुक्र करो कि ससुर के घर जाने से बाल-बाल बच गए।"

बालकृष्ण के चेहरे पर अब भी घबराहट का भाव था। बोला, "मन्न भैया ! कैसे खोद-खोदकर पूछ रहा था और उसकी तीखी नजरें ! बाप रे !"

"हां, मि० दामोदर ! अब यह मत समझना कि मि० मूर्ति महाशय आपको सचमुच कीर्तनकार समझकर संतुष्ट रहेंगे। अब तो बम्बई में आपके पीछे कोई साया लगा रहेगा।" साठे की बात सुनकर दोनों भाई चौंक उठे।

"क्या सच ? लेकिन एक ही अफसोस रहेगा।" दामोदर के शब्दों पर साठे ने पूछा, "क्या ?"

"बम्बई में हफ्ता रहकर भी कुछ कर न सके !"

"मतलब ?"

"मतलब यही कि इन हाथों से कोई यादगार न छोड़ सके।"— दामोदर ने मुट्ठियां कसते हुए कहा।

दोनों मित्र हंस पड़े। वे समझ गए कि दामोदर यहां से जाने से पहले कोई कौशल दिखाना चाहता है। तीनों सोचने लगे कि क्या किया जाए!

तभी दामोदर सामने देखकर बोल उठा, "मिल गया। मिल गया।"

"क्या?" दोनों ने दामोदर की दृष्टि की दिशा में देखा। सामने चौराहे पर क्वीन विक्टोरिया की गर्वोन्नत मूर्ति मानो इन्हें चुनौती दे रही थी।

अब क्या था? कुछ ही देर में एक बढ़िया योजना बन गई। समय निश्चित हुआ अगले दिन प्रातः तीन बजे।

साठे की आशंका निराधार न थी। सचमुच ही उस रात घूमते हुए उन्हें अनुभव हुआ कि कोई छाया बराबर उनका पीछा कर रही है।

उस रात तीनों में से एक भी न सो सका। पहले तो वे बड़ी देर तक योजना के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा करते रहे। फिर तीनों चुप पड़े उस घड़ी की इन्तजार करते रहे। ज्यों ही तीन बजने को हुए—दामोदर उठ खड़ा हुआ। बालकृष्ण और साठे तो पहले से ही जगे हुए थे। तीनों की वेशभूषा साधारण ग्रामीणों जैसी थी। दामोदर ने एक थैला भर कन्धे से लटका लिया था। बाकी दोनों मित्र खाली हाथ थे, लेकिन जेबों में भरी पिस्तौलें थीं।

तीनों चौराहे की ओर चल दिए। चौराहे पर आकर एक सड़क पर साठे और दूसरी पर बालकृष्ण खड़ा हो गया, क्योंकि दोनों दिशाओं की चौकसी जो करनी थी। दामोदर चीते की तेजी और सिंह की सतर्कता से आगे बढ़ा। उसकी आंखें अपने लक्ष्य की ओर देख रही थीं। रात्रि का गहन अंधकार था। दूर टिमटिमाती बत्तियां व आकाश के सितारे मानो गवाह बने थे। दामोदर तेजी से प्रतिमा की ओर बढ़ा और झटपट अपना काम समाप्त कर नीचे उतर आया। पल-भर खड़ा रहकर उसने देखा—विक्टोरिया का संगमरमरी श्वेत बुत कोलतार से काला पुत गया था और उसके गले में जूतों की माला लटक रही थी।

व्यंग्य से हँसकर दामोदर बोला, "अंग्रेज महारानी ! यही है तुम्हारा असली चेहरा और यही है तुम्हारा असली रंग ! तुम्हारा उचित स्वागत यह माला ही कर रही है···" और असीम सन्तुष्टि से वह अपने साथियों के पास लौट आया।

अब उन्होंने एक पल की भी देरी न की। काम विधिवत् पूरा हो चुका था। सुबह भी वे दरवाज़े से न निकलकर खिड़की से कूदकर पीछे की तरफ से आए थे ताकि गुप्तचर की आंखों में भी धूल झोंकी जा सके। अब उनके पांव खुशी-खुशी स्टेशन की तरफ बढ़ने लगे। उनकी योजना थी कि बम्बई स्टेशन से काफी आगे चलकर किसी छोटे स्टेशन से पूना के लिए गाड़ी ली जाए।

जब वे पूना पहुंचे तब सांझ का झुटपुटा हो रहा था। वे जान-बूझकर मार्ग में रुकते रहे थे, क्योंकि वे नगर में दिन छुपे प्रवेश करना चाहते थे। सबसे पहले वे क्लब की ओर चले। अपने मित्रों से मिलने और नगर की हालत जानने के लिए वे बेचैन थे। रास्ते में उनसे यह छुपा न रहा कि नगर की हालत पहले से कहीं ज्यादा बिगड़ चुकी थी।

जब उन्होंने क्लब के मैदान में प्रवेश किया, तब तक उनके साथी मिलने के बाद अन्दर कमरे में जा बैठे थे। पुलिस द्वारा छापा पड़ने के बाद इस कमरे का सब सामान हटाया जा चुका था। अब वहां न तो वीरोत्तेजक साहित्य रहा था, न ही अस्त्र-शस्त्र ! उनके स्थान पर हाकी, फुटबाल, लाठी, बल्लम, बैडमिंटन आदि खेलों का सामान रखा था।

कमरे में कदम रखते ही दामोदर की गंभीरता मानो पंख लगाकर उड़ गई। पहले जैसे उच्च स्वर से नाद किया, "जय बजरंगबली !"

सबने चौंककर द्वार की ओर देखा और खिल उठे, "आह ! हा ! दामोदर भैया ! बालकृष्ण, साठे ! आज का दिन कितना भाग्यशाली है। मित्रो ! तुम्हारे बिना तो क्लब ऐसे निर्जीव हो गया था, जैसे प्राण बिना शरीर !" मित्रों के इस उत्साह-भरे स्वागत से तीनों के आनन्द

की सीमा न रही।

दामोदर तो ऐसे खिल उठा जैसे नवजीवन पाया हो। बोला, "मित्र कहूं तो अपने बम्बई व पूना से दूर रहकर मेरा पल-भर मन न लगा। बम्बई तो मेरे लिए सूनी थी। अच्छा, यह तो कहो कि नगर का अब क्या हाल है?"

इस प्रश्न के उत्तर में सब चुप, उदास हो गए। थोड़ी देर पहले का उल्लास अब शोक में बदल गया। बुझे स्वर में एक ने उत्तर दिया, "नगर की दशा का क्या बताएं भैया! यह तो हर पल अधिक असह्य होती जा रही है। उस नरपिशाच रैंड ने इसे साक्षात् नरक बना दिया है। कानून तो कोई रहा नहीं। जो है, उसे तोड़-मरोड़कर वह तो मानो पूनावासियों का बीज नाश करने पर तुला है।"

"हूं···ऐसा!" दामोदर दांत पीस उठा। कुछ देर के सन्नाटे के बाद दूसरा साथी बोल पड़ा, "सच तो यह है जैसा कि गुरुदेव ने 'केसरी' में लिखा है—'ये अत्याचार हमपर इसलिए किए जा रहे हैं, क्योंकि हम गरीब और असहाय हैं। लेकिन सरकार को याद रखना चाहिए कि यह हालत सदा नहीं रहेगी। रैंडशाही एक दिन खत्म होकर रहेगी। जनता कमजोर है तो क्या? एक बार कठोर निश्चय कर लेने की देर है। तब वही कमजोर जनता क्रूर रैंडशाही में पिसने की बजाय प्लेग से तड़पकर या शस्त्र से कटकर मर जाना अधिक अच्छा समझेगी।'"

"शस्त्र से कटकर मर जाना या मार देना," दामोदर ने निर्णय-सा लेते हुए दुहराया।

तभी एक और साथी बोला, "हम कब से तुम्हारी राह देख रहे थे दामोदर! अब अधिक चुप बैठे रहना हमारे पौरुष के लिए कलंक की बात है। तुम हमारे नेता हो। तुम आगे बढ़ो। हम सब तुम्हारे पीछे हैं।"

एक और उत्तेजित युवा बोला, "बस, अब किसी भी तरह इस अत्याचारी फिरंगी से पूना को मुक्ति दिलाओ।"

इन शब्दों में सब तरुणों का रोष व आक्रोश मानो बोल उठा।

दामोदर तो पहले ही कृत सकल्प था। आज इन चेहरों पर मानो पूना-वासियों की मूक पीडा अंकित दिखाई दे रही थी। उसने छत्रपति शिवाजी के चित्र की ओर देखा और बस निर्णय ले लिया, "क्रूर रैंड का वध !"

इस भयकर कार्य के लिए तीन व्यक्ति तैयार हुए—दामोदर, बालकृष्ण, और भिडे। भिडे के जिम्मे यह काम था—मि० रैंड के बारे में सब जानकारी लेना यानी उसके आने-जाने के समय, गाडी व कार्य-क्रम—सब कुछ ! हत्या की पूरी योजना क्लब के कुछ गिने चुने सदस्यों को ही बताई गई।

सब तय हो जाने के बाद दामोदर, बालकृष्ण व भिडे लोकमान्य तिलक के निवास की ओर चल दिए। क्योंकि गुरुदेव के आशीर्वाद के बिना उन्हें सफलता का विश्वास कैसे होता !

जैसे ही वे लोकमान्य तिलक के पास पहुचे, उन्होंने वात्सल्य से उमड़ते हुए इनका स्वागत किया। इन्हे भी ऐसा अनुभव हुआ जैसे अपने परम आत्मीय के पास आ पहुचे हों। कुछ देर कुशल-समाचार आदि के पश्चात् दामोदर कह उठा, "गुरुदेव ! अब तो पानी सिर से ऊपर जा चुका है। कोई रास्ता··· ?"

निराशा से सिर हिलाते हुए तिलक बीच में कह उठे, "कोई रास्ता नहीं बचा। बड़े-बड़े विद्वानों, कानून-विशेषज्ञों ने ब्रिटिश सत्ता के इस काले कानून की आलोचना की। स्वय मैंने एक स्मरण-पत्र गवर्नर लार्ड ऐम्हर्स्ट को भेजा। परन्तु परिणाम कुछ भी न निकला। गवर्नर ने वह स्मरण-पत्र रैंड को भिजवा दिया और रैंड ने उसे रद्दी की टोकरी में फेंक दिया।"

सब स्तब्ध-से बैठे थे। कुछ पल बाद तिलक का गभीर स्वर फिर गूजा, "मुझे यतीन्द्रनाथ घोष के शब्द याद आते हैं कि अंग्रेज शासकों के कान इतने बहरे हो चुके हैं कि अब विस्फोट के धमाके ही उनकी नीद खोल सकते हैं।"

इन शब्दों ने मानों अधकार में मशाल का काम किया। तीनों के चेहरे आशा से चमक उठे। दामोदर बोला, "गुरुदेव ! फिर देरी किस

यान की? हमने तो आज प्रण कर लिया है कि शिवा के मंत्र पर चलेंगे और मार कर मरेंगे।" उनके शब्दों के उत्साह मानों समा नहीं रहा था।

तिलक की गम्भीरता भी जाती रही। उल्लास की चमक नेत्रों में भर कर बोल उठे, "शाबाश पुत्रो! मुझे तुमसे यही आशा थी।"

कुछ पल मौन रहने के बाद वे फिर बोले, "तो तुम तैयार हो?" प्रश्न के साथ उनके तेजस्वी नेत्र दामोदर की ओर उठे मानो उनके साहस व दृढ़ता को तोल रहे हों।

'अवश्य, गुरुवर! आपके आशीर्वाद से मैं यह कठिन कार्य अवश्य कर लूंगा--" दामोदर के प्रत्येक शब्द से आत्मविश्वास टपक रहा था।

"तुम्हें सफलता अवश्य मिलेगी मेरे आशीर्वाद से ही नहीं, जननी जन्मभूमि के आशीर्वाद से भी! जनता की सिसकती आत्माएं तुम्हें बल प्रदान करेंगी "निर्दोष-ग्रस्त लोगों की दुआएं तुम्हारा मार्ग सरल करेंगी" पूना की पीड़ित आत्मा उस क्षण कितनी सुखी होगी, जब तुम्हारे हाथों उस आततायी का शव धरती पर लोटेगा। तभी अन्धी ब्रिटिश सत्ता देख सकेगी कि भारतीय तरुणों का स्वाभिमान अभी मरा नहीं है—" बोलते-बोलते तिलक के मुख पर तेज-सा झलकने लगा।

दामोदर बालकृष्ण व भिड़े के नेत्र उस लोकनायक के प्रति श्रद्धा से झुक गए। उनका एक-एक शब्द उनमें नया रक्त संचार कर रहा था। अपूर्व उत्साह हृदयों में लहरें लेने लगा।

जाने से पूर्व उन्होंने तिलक से आवश्यक परामर्श किया। योजना के सभी अंगों पर विचार किया। तिलक ने उन्हें धन की भी सहायता दी।

22 जून, 1897 को महारानी विक्टोरिया के राज्यारोहण की हीरक जयन्ती मनाई जानी थी। अंग्रेजों द्वारा यह समारोह कई दिनों से मनाया जा रहा था। 22 जून को मंगलवार था। यही दिन रैंड-वध के लिए निश्चित किया गया।

भिडे हमेशा ही सरकारी दफ्तरों में आता-जाता रहता था। उस-पर अंग्रेज़ अधिकारियों को शक न था। इस विश्वास का अब उसने सदुपयोग किया। उसने 22 जून के पल-पल का पूरा विवरण पता कर लिया। मि० रैंड के आने-जाने का सारा समय पता कर लिया।

"अब क्या रहा? सब तैयारी तो हो चुकी," दामोदर उत्साह से चहक उठा।

पर बालकृष्ण कुछ याद करता-सा बोला, "नहीं भैया! एक प्रमुख स्थल तो तुम भूल ही गए···"

चौंककर दामोदर के कदम रुक गए, "कौन-सा स्थल?"

"घर!" बालकृष्ण की मुस्कान रहस्य-भरी थी। उसमें विनोद भी था और पीड़ा भी।

"हां, घर···" एक लंबी सांस खींच दामोदर खड़ा ही रहा। कल्पना में ममतामयी मां, सरल संत-से पिता और आहत हिरणी-सी पत्नी की आंखें मानो पूछने लगीं, "तुम कहां जा रहे हो? हमें न बताओगे···हमें तो तुम्हारा ही सहारा है···" और फिर नन्हे केशव का छोटे-छोटे हाथ-पावों से उसकी टांगों में आ लिपटना। दामोदर को लगा वह जकड़ा-सा गया है! आंखें धुंधला गईं···पांव लड़खड़ा गए!

बालकृष्ण भी अन्तर् से हिल-सा गया था। उसकी आंखों में चंचल रुक्मिणी की छाया आ रही थी। माधव की किलकारियां मानो हृदय पर आघात-सा कर रह थीं। वह कसकर दामोदर का हाथ पकड़कर बोला, "भैया! हमें प्राण जाने का तो खतरा नहीं है न! हमारी योजना का प्रत्येक सूत्र इतना दृढ़ है कि हमारा नाम ब्रिटिश हवा तक न सूंघ पाएगी।"

उसके आश्वासन को सुन चिन्ताकुल दामोदर भी मुस्कराए बिना न रह सका। "अरे पगले! बेशक हमारी योजना सुरक्षित है, फिर भी यह ब्रिटिश-बाघ के मुंह से दांत उखाड़ने जैसा जोखिम का काम है। एक न एक दिन उनके लंबे हाथ हम तक पहुंच भी सकते हैं। सुना भी है न कि इश्क और कत्ल छुपाए नहीं छुपते।"

अब बालकृष्ण ने दूसरा आश्वासन दिया, "खैर, अगर हम पकड़े

भी गए, तो मा और पिताजी तो हमें इस श्रेष्ठ कार्य के लिए आशीर्वाद ही देंगे···उनका दिल बहुत बड़ा है···पर भाभी ?"

उसके प्रश्नसूचक नेत्रों को देख दामोदर ने वैसे ही आंखें चुरा लीं, जैसे वह अक्सर राधा के सामने किया करता था। मुख पर जबरन मुस्कान लाते हुए उसने बालकृष्ण की पीठ पर धौल जमा दिया, "वाह रे! भाभी की ओट में रुक्मिणी को याद कर रहा है न! तू है बड़ा ही छुपा रुस्तम!" इसपर दोनों भाई खिलखिला पड़े। किन्तु दोनों ही जानते थे कि उनकी हंसी कितनी खोखली है!

घर पहुंचते-पहुंचते सांझ हो गई। जब दोनों ने भीतर कदम रखा, तो सबका समवेत मन्त्र-पाठ सुनाई दिया। हाथ-पैर धोकर दोनों उधर ही चले, जहां छोटे-से पूजा-गृह में सारा परिवार एकत्रित था। यह चाफेकर परिवार का नियम था। नित्य प्रातः-सांय सब कुछ समय पूजा-घर में अवश्य बिताते। विशेषतः सन्ध्या आरती वेला में तो सब जरूर ही एकत्रित होते। आज दामोदर व बालकृष्ण बहुत दिनों बाद सबके साथ बैठे थे। बम्बई जाने से पहले की सन्ध्या भी सबने साथ बिताई थी। उसके बाद आज वे पूजा-घर में आए थे।

उन्हें आया देख भावुक बहुओं के हृदयों में आशंका उभर आई—'क्या अब फिर किसी यात्रा की तैयारी···?' किन्तु उन्होंने मन को उधर से हटाकर देवमूर्ति की ओर लगा लिया।

माधव व केशव झटपट उछलकर अपने पिता की गोद में आ बैठे। दोनों ने अपने बेटों को हृदय से लगा लिया। भावातिरेक में आंखें मुंद गईं। सब गा रहे थे—"त्वमेव माता च पिता त्वमेव···" दोनों के अधर भी अभ्यासवश गा रहे थे पर मन? मन तो कहीं दूर भटक रहा था। विचार-तरंगें हृदय के सागर को मथ रही थीं—'आज के बाद हम कहां होंगे? इन नन्हे फूलों को हमारी गोद न मिलेगी···मां···पिता···घुट-घुट कर ठंडी सांसें भरा करेंगे···पूजा-घर में अपने पुत्रों के लिए आशीर्वाद की प्रार्थना करेंगे···ऐसी निष्फल प्रार्थना जो शायद फली-भूत नहीं होगी···हमारी प्रिया सांझ का दीया जलाकर सूनी देहरी पर आंसू भरी आंखों से प्रिय का पथ निहारेंगी···आह!' घबराकर दं

ने आखें खोल दी। देखा—सामने मा आरती का थाल लिए खड़ी थी, "अरे, सो गए थे तुम दोनो ? और···तुम्हारी आखें भी लाल व भरी-भरी हैं···क्या बात है बेटा !" आशकित मा कभी बालकृष्ण, कभी दामोदर को देखती बोल पड़ी।

"क्या हुआ ?" पूछते हुए पिता भी पास आ गए और राधा व रुक्मिणी भी आकुल-सी उन्हे देखने लगी। वासुदेव ने व्याकुलता से भाई का हाथ पकड लिया। दोनों भाई यों सकपका गए मानो उनका भेद खुल गया हो। दामोदर ने झट बात बनाई, "कुछ नही मा ! मैं ध्यानमग्न था कि बजरगबली के इस दूत ने मुझे ऐसी चुटकी काटी कि आख मे पानी भर आया···क्यों रे वानर ! आजकल बडा शरारती हो रहा है···" कहते-कहते दामोदर ने एक हल्की धौल केशव की पीठ पर जमा दी।

वह खिलखिला उठा, "आई (दादी मा) ! पिताजी झूठ बोलते हैं·· आप ही मुझे मुक्का मारते हैं और मेरा झूठा नाम लगाते हैं···" इसपर सब हंस पडे। तभी नन्हे माधव की तोतली बोली सुनाई दी, "पिताजी झूते, पिताजी झूते···"

"अरे, ठहर जा, छोटे लंगूर—" और दामोदर ने एक ही बार दोनों को अपने कन्धों पर बैठाकर जोर से घोष किया, "जय बजरग बली !" यह उसका प्रिय बोल था। दोनो बच्चो को हवा मे उछालता हुआ दामोदर पल-भर मे सब कुछ भूल गया। उदासी का कुहासा फट गया और सबके चेहरों पर खुशी का उजाला चमकने लगा। बच्चे इस उछल-कूद के अभ्यस्त थे। आज बड़े दिनो बाद उन्हे दामोदर की धमाचौकडी का आनन्द मिला था। उन्हे खूब मज़ा आ रहा था।

दिन-भर घर मे त्यौहार-सी उमग छाई रही। इतने दिनो बाद दोनो भाइयों को ऐसी उमंग मे देख मा व दोनों बहुए भी खूब मग्न होकर उनके मनपसंद पकवान्न बनाने मे लग गई। दिन खाते-पीते, खेलते हुए बीत गया। सायंकाल होते ही बहुओ ने आगन मे तुलसी के सामने दीपक जला दिया। आरती-बेला की पावनता मे मन का हर्ष-विषाद सब घुलकर भक्ति-भाव मे मिल गया।

रात्रि-भोजन के बाद तीनों भाई, मा, पिता व बहुएं सब बड़ी देर बैठे बातें करते रहे। कई विषयों पर बातें चली पर मुख्य विषय था, 'रैंडशाही'। बार-बार घूम-फिरकर बात वहीं आ जाती और वहां अके टूट जाती। आखिर पिता बोले, "बेटा ! मुझे तो अब प्रभु की शक्ति पर भी आस्था नहीं रही है···कैसे हैं वे दीनबन्धु, सर्वशक्तिमान् प्रभु, जो आपकी सन्तान को नरपिशाच रैंड के हवाले कर निश्चित बैठे हैं···?"

उत्तर दिया मा ने, "प्रभु को दोष देने से काम न चलेगा ! आप ही तो कहा करते हैं कि प्रभु-कार्य में साधन तो मानव ही बनता है। सो यह कहिए कि आज कोई सच्चा मानव ही नहीं रहा जो प्रभु-कार्य को करने आगे आए ! ये सब तो चलती-फिरती लाशें हैं—जिनका स्वाभिमान का खून ठंडा पड़ चुका है···" बोलते-बोलते मा का चेहरा तेजस्विता से चमक उठा !

पल-भर सब स्तब्ध-से बैठे रहे। दामोदर व बालकृष्ण के चेहरे उत्साह से दमक उठे थे। थोड़ी देर बाद दामोदर बोला, "तब तो मा, हमें भी कुछ कठिन कर्तव्य करके दिखाना होगा वरन् हम भी स्वाभिमान शून्य ही साबित होंगे···"

"बिल्कुल। पराक्रम ही से सिंह सिंह कहलाता है और उसे पराक्रम की सीख नहीं देनी पड़ती 'स्वयमेव मृगेन्द्रता'।"

'स्वयमेव मृगेन्द्रता' धीरे-से दोहराया दोनों ने और उठ खड़े हुए। धीमे पगों से वे अपने कमरों में चले गए।

पौ फटते ही दामोदर की आंख खुल गई। आज वह राधा से पहले ही जाग उठा था। बाहर अभी धुंधलापन था। उसने आर्द्र आंखों से राधा व केशव की ओर देखा और फिर नयन मूंद अपने इष्टदेव का स्मरण किया—"प्रभु ! मैं तुम्हारे इच्छित कार्य में सर्वस्वार्पण करने जा रहा हूं···अब मेरे प्रिय जन तुम्हारे हवाले हैं !"

उस दिन मंगलवार था। दामोदर ने स्नान के पश्चात् महावीर का व्रत धारण कर लिया। प्रायः वह ऐसा किया करता था अत. किसी को कोई आश्चर्य न हुआ। आज तो बालकृष्ण ने भी व्रत रखा। ...

भाई बडी देर पूजा-गृह में रहे। दिन-भर वे गंभीर ही बने रहे। कुछ देर माधव व केशव से मेलने के अतिरिक्त अधिकांश समय दोनों एकांत में विचार-विमर्श करते रहे।

सायंकाल हुई। तुलसी-मैया पर दीपक जलाकर दोनों बहुएं भीतर जाने लगी थीं तभी मां के साथ-साथ केशव व माधव भी वहीं आ गए। उधर से "जय बजरंग बली" का नाद गुंजाते हुए दामोदर आ पहुंचा। बालकृष्ण व वासुदेव भी साथ थे।

"मां, प्रशाद दो।" मां ने मुस्कराकर प्रशाद का थाल आगे किया। "आज तो प्रशाद के साथ-साथ महावीर का भरपूर आशीर्वाद भी चाहिए मां!" क्यों? उत्सुक दृष्टि से सबने उन्हें देखा। दोनों की चुस्त वेशभूषा से वह समझ गई कि कहीं जाने की तैयारी है!

"क्यों, आज फिर किसीसे लडने-भिडने की तैयारी है? दामोदर, तू कभी चैन से नहीं रह सकता न!" मीठी फटकार के साथ मां ने दोनों को खूब लड्डू दिए।

"आई! मैं भी हूं···मेरा भी व्रत था—" नीचे से नन्हा केशव झटपट माधव का हाथ पकड आगे चला आया। उसने सोचा शायद उस तक पहुंचते-पहुंचते लड्डुओं का आकार ही न घट जाए।

"अरे, आइए व्रतधारी जी—" कहते-कहते दामोदर ने दोनों को, दाएं-बाएं उठा लिया—"लो, मां, डालना पूरा-पूरा लड्डू इन व्रतधारियों के मुंह में!" और सबके मधुर हास से आंगन गूंज उठा। अब तक बाबा भी आकर मन्द-मन्द मुस्कराने लगे थे।

अब दोनों भाइयों ने माता-पिता के पांव छुए, वासुदेव को गले लगाया। वह कुछ रुष्ट था कि उसे साथ क्यों नहीं ले जा रहे। पर बड़े भाई ने प्यार से समझा दिया था—"अभी नहीं···"

माता-पिता जानते थे कि उनके बेटे कृष्ण के कर्मयोग की घुट्टी पीकर ही जन्मे हैं। इसलिए ऐसे अवसरों पर वे न तो कोई प्रश्न पूछते, ना ही उन्हें रोकते, बल्कि उदार मन से आशीर्वाद ही देते। किन्तु आज न जाने क्यों जब दोनों ने पांव छुए, तो पीठ थपथपाते हुए उनका हाथ कांप उठा और आंखें डबडबा गईं।

आशंकित मन को समझाते-से वे कह उठे, "बेटा ! तुलसी मैया को प्रणाम कर ले।"

दोनों ने तुलसी के चौरे पर माथा झुकाया। पास ही सिर झुकाए राधा व रुक्मिणी खड़ी थी। सबकी नजर बचाकर दोनों ने उन्हें मुस्कराकर देखा और नयनों से आश्वस्त कर दिया ! माधव व केशव अपने चाचा के साथ चकित-से खड़े थे। उन्हें प्यार से थपथपाकर दोनों शीघ्रतापूर्वक बाहर की ओर चल दिए।

उनके पांव की आहट के साथ ही साथ सबके हृदय की एक-एक धड़कन अनेक-अनेक मंगल कामनाओं के पुष्प बिखेरती रही !

उस दिन 'गवर्नमेंट हाऊस' की सजावट आंखों को चुंधिया देने वाली थी। दीपों व मोमबत्तियों ने रात को भी दिन जैसा उजाला बना दिया था। आस-पास की छोटी-छोटी पहाड़ियों पर कैंप-फायर की धूम थी। वृक्षों व झाड़ियों में रंग-बिरंगे बल्बों को ऐसे लगाया गया था कि सेब और नाशपातियों का भ्रम-सा हो रहा था। रंग-बिरंगी आतिश-बाजी मानो सोने पर सुहागे का काम कर रही थी।

गणेश खिण्ड की सड़क पर पहुंचते ही दोनों भाई भी गवर्नमेंट हाऊस जाने वाली भीड़ में शामिल हो गए। तमाशबीनों की रेल-पेल में वे भी आगे बढ़े जा रहे थे। गवर्नमेंट हाऊस के सामने पहुंच वे रुक गए।

भीतर हाल-कमरे का दृश्य तेज रोशनी से छनकर बाहर दिखाई दे रहा था। सुरा-सुन्दरी व वैभव का अपूर्व संगम हो रहा था। प्यालों की खनक, वाद्य-यंत्रों की मधुर धुन पर थिरकते स्त्री-पुरुष···

शीशे में अपलक देखते हुए एक अंग्रेज-भक्त बोल उठा, "वाह ! क्या सुन्दर दृश्य है ! जिन स्वर्ग का वर्णन हम पढ़ा करते है, वह सचमुच ही धरती पर उतर आया है ! साक्षात् इन्द्र समान राजा अंग्रेज···अप्सरा सरीसी गोरी युवतियां···सेबों जैसे खूबसूरत बच्चे···और ऐश्वर्य भरा यह दरबार···काश ! हम भी अन्दर जा सकते···" वह उत्साह में शायद और कुछ बोलता, अगर एक अधेड़ व्यक्ति की डपट-भरी आवाज

उसे न रोक लेती।

उसने मानो चाबुक-सा लगाते हुए कहा, "बस, बस ! बन्द करो यह झूठी बकवास ! तुम जिस स्वर्ग की प्रशंसा के पुल बांध रहे हो, जानते हो वह किसकी नींव पर खड़ा है ? इस स्वर्ग के नीचे वह नरक है, जिसमें आज पूनावासी सिसक रहे हैं ! इस स्वर्ग ने हमें दिया है प्लेग, अकाल और प्लेग-अधिकारी रैंड ! जिसकी तुलना बस दैत्यासुर से ही की जा सकती है। इनके गालों की लाली उस खून की है, जो असहाय नागरिकों का निचोड़ा जा रहा है। यह ऐश्वर्य और नृत्य *उस हाहाकार को छुपाए है जो 'रैंडशाही' में पिसते हुए पूनानिवासी* भुगत रहे हैं..." आवेश में उसका गला रुंध गया। किन्तु भीड़ में प्रायः सभी ने सिर हिलाते हुए उसका समर्थन किया। उस प्रशंसक पर तो जैसे घड़ों पानी पड़ गया। वह चुपके से खिसक गया।

दामोदर व बालकृष्ण भी दूर खड़े इस संवाद को सुन रहे थे। उस अधेड़ पुरुष की बात सुन उन्होंने अपने अन्दर असीम बल का अनुभव किया। "जनता-जनार्दन की भी यही इच्छा है, भैया !" बालकृष्ण धीरे से बोला।

उत्तर में शीशे के पार घूरते हुए दामोदर ने दांत पीसते हुए कहा, "पी लो शराब के उफनते जाम ! बस, तुम्हारी जिन्दगी के ये आखिरी जाम है—फिर तो तुम्हारे खून के जाम प्यासी धरती पिएगी..."

अपने क्रोध को पीकर दामोदर पीछे मुड़ा फिर भी अन्दर से उठने वाले ठहाकों के बीच विक्टरी टू विक्टोरिया (Victory to Victoria) का शोर मानो उसके कानों को चीर रहा था। तेजी से वे दोनों लौटे और सड़क के किनारे की घनी झाड़ियों में छुपकर बैठ गए।

उधर भिडे भी सतर्कता से तैनात था। बेशक उसने इन दोनों को मि० रैंड व अन्यों की गाड़ी के आने का ठीक समय बता दिया था। तो भी वह अभी अपने कर्तव्य पर डटा था।

आधी रात होने को आई। दामोदर व बालकृष्ण पिस्तौल हाथ में लिए दम साधे पड़े थे। एक-एक सैकिण्ड पर उनके दिल की धड़कन बढ़

आवाज सुन रही थी। भिड़े ने चुपके से आकर संकेत दिया और दोनों सिंह-समान सतर्क हो गए।

गवर्नमेंट हाउस से मि० रैंड की घोड़ागाड़ी निकली। गाड़ी की पूरी पहचान उन्हें पहले से थी। घोड़े की टापें नजदीक आ रही थीं···500 गज दूर गाड़ी पहुंची होगी, तभी दामोदर ने शेर-सी छलांग भरी और गाड़ी के पिछली ओर चढ़ गया। पलक झपकते ही उसने अपनी पिस्तौल से मि० रैंड की रीढ़ की हड्डी का निशाना बांधा—"ठांय···ठांय···"—दो गोलियां चलाईं ताकि उसका काम अधूरा न रहे। उसी क्षण रैंड मूच्छित होकर गाड़ी में औंधे मुंह गिर पड़ा और दामोदर नीचे कूद झाड़ियों में गायब हो गया।

गाड़ीवान बदहवास-सा चिल्लाने लगा। घोड़े भी बिदककर बेतहाशा दौड़ने लगे। पीछे आ रही गाड़ी में ले० ऐमहर्स्ट व उसकी पत्नी थे। उन्होंने इस शोर को सुना तो समझे कि गाड़ीवान पैदल चलनेवालों पर चिल्ला रहा होगा! किन्तु ऐमहर्स्ट की पत्नी ने किसी युवक को अगली गाड़ी से नीचे कूदते देख लिया था। इससे पहले कि वह अपनी आशंका से ऐमहर्स्ट को सावधान करती···बालकृष्ण भी एक ही छलांग में बग्घी के पीछे से चढ़ा और ऐमहर्स्ट के सिर का निशाना बांध गोली दाग दी। ऐमहर्स्ट उसी क्षण मृतवत् पत्नी की गोद में गिर पड़ा। बालकृष्ण भी पल-भर में नीचे उतरकर झाड़ियों में गुम हो गया।

"ओह, माई गॉड!" की दर्दनाक चीख से नीरव रात्रि का परदा फटने लगा। ऐमहर्स्ट की पत्नी चीख रही थी! उधर गाड़ीवान चिल्ला रहा था और घोड़े हिनहिनाते हुए भागे जा रहे थे। पीछे आ रही गाड़ी में ले० लूइस थे। उन्होंने आगामी संकट को भांप लिया। तेजी से वह आगे पहुंचा। पहले मि० रैंड की गाड़ी के घोड़ों को काबू में किया और फिर ऐमहर्स्ट की गाड़ी को। परन्तु ज्योंही उसने दोनों गाड़ियों के अन्दर का दृश्य देखा, तो उसके रोंगटे खड़े हो गए।

एक ही वार में दो अंग्रेज अफसरों का कत्ल! वह भी विक्टोरिया जुबली की रात! पल-भर के लिए उसका सिर घूम गया। लगा सर्व-

उसे न रोक लेती।

उसने मानो चाबुक-सा लगाते हुए कहा, "बस, बस ! बन्द करो यह झूठी बकवास ! तुम जिस स्वर्ग की प्रशंसा के पुल बांध रहे हो, जानते हो वह किसकी नींव पर खड़ा है ? इस स्वर्ग के नीचे वह नरक है, जिसमें आज पूनावासी सिसक रहे हैं ! इस स्वर्ग ने हमें दिया है प्लेग, अकाल और प्लेग-अधिकारी रैंड ! जिसकी तुलना बस दैत्यासुर से ही की जा सकती है। इनके गालों की लाली उस खून की है, जो असहाय नागरिकों का निचोड़ा जा रहा है। यह ऐश्वर्य और नृत्य उस हाहाकार को छुपाए है जो 'रैंडशाही' में पिसते हुए पूनानिवासी भुगत रहे हैं···" आवेश में उसका गला रुंध गया। किन्तु भीड़ में प्रायः सभी ने सिर हिलाते हुए उसका समर्थन किया। उस प्रशंसक पर तो जैसे घड़ों पानी पड़ गया। वह चुपके से खिसक गया।

दामोदर व बालकृष्ण भी दूर खड़े इस संवाद को सुन रहे थे। उस अधेड़ पुरुष की बात सुन उन्होंने अपने अन्दर असीम बल का अनुभव किया। "जनता-जनार्दन की भी यही इच्छा है, भैया !" बालकृष्ण धीरे से बोला।

उत्तर में शीशे के पार घूरते हुए दामोदर ने दांत पीसते हुए कहा, "पी लो शराब के उफनते जाम ! बस, तुम्हारी जिन्दगी के ये आखिरी जाम हैं—फिर तो तुम्हारे खून के जाम प्यासी धरती पिएगी···"

अपने क्रोध को पीकर दामोदर पीछे मुड़ा फिर भी अन्दर से उठने वाले ठहाकों के बीच विक्टरी टू विक्टोरिया (Victory to Victoria) का शोर मानो उसके कानों को चीर रहा था। तेजी से वे दोनों लौटे और सड़क के किनारे की घनी झाड़ियों में छुपकर बैठ गए।

उधर भिड़े भी सतर्कता से तैनात था। बेशक उसने इन दोनों को मि० रैंड व अन्यों की गाड़ी के आने का ठीक समय बता रखा था। तो भी वह अभी अपने कर्तव्य पर डटा था।

आधी रात होने को आई। दामोदर व बालकृष्ण पिस्तौल हाथ में लिए दम साधे पड़े थे। एक-एक सैकिन्ड पर उनके दिल की धड़कन की

आवाज सुन रही थी। भिडे ने चुपके से आकर संकेत दिया और दोनों सिंह-समान सतर्क हो गए।

गवर्नमेंट हाउस से मि० रैंड की घोडागाडी निकली। गाडी की पूरी पहचान उन्हें पहले से थी। घोड़े की टापें नजदीक आ रही थी···500 गज दूर गाड़ी पहुंची होगी, तभी दामोदर ने शेर-सी छलांग भरी और गाडी के पिछली ओर चढ़ गया। पलक झपकते ही उसने अपनी पिस्तौल से मि० रैंड की रीढ की हड्डी का निशाना साधा—"ठाय···ठाय···"—दो गोलियां चलाईं ताकि उसका काम अधूरा न रहे। उसी क्षण रैंड मूर्च्छित होकर गाडी में औंधे मुंह गिर पड़ा और दामोदर नीचे कूद झाडियों में गायब हो गया।

गाडीवान बदहवास-सा चिल्लाने लगा। घोड़े भी बिदककर बेतहाशा दौड़ने लगे। पीछे आ रही गाड़ी में ले० ऐमहर्स्ट व उसकी पत्नी थे। उन्होंने इस शोर को सुना तो समझे कि गाडीवान पैदल चलनेवालों पर चिल्ला रहा होगा! किन्तु ऐमहर्स्ट की पत्नी ने किसी युवक को अगली गाड़ी से नीचे कूदते देख लिया था। इससे पहले कि वह अपनी आशंका से ऐमहर्स्ट को सावधान करती···बालकृष्ण भी एक ही छलांग में बग्घी के पीछे से चढ़ा और ऐमहर्स्ट के सिर का निशाना साध गोली दाग दी। ऐमहर्स्ट उसी क्षण मृतवत् पत्नी की गोद में गिर पड़ा। बालकृष्ण भी पल-भर में नीचे उतरकर झाड़ियों में गुम हो गया।

"ओह, माई गॉड!" की दर्दनाक चीख से नीरव रात्रि का परदा फटने लगा। ऐमहर्स्ट की पत्नी चीख रही थी! उधर गाडीवान चिल्ला रहा था और घोड़े हिनहिनाते हुए भागे जा रहे थे। पीछे आ रही गाडी में ले० सूदन थे। उन्होंने आगामी संकट को भांप लिया। तेजी से वह आगे पहुंचा। पहले मि० रैंड की गाडी के घोड़ों को काबू में किया और फिर ऐमहर्स्ट की गाडी को। परन्तु ज्योंही उसने दोनों गाडियों के अन्दर का दृश्य देखा, तो उसके रोंगटे खड़े हो गए।

एक ही बार में दो अंग्रेज अफसरों का खून! वह भी विक्टोरिया जुबली की रात! पल-भर के लिए उसका सिर घूम गया। सारा सब-

कर भूचाल आ रहा है।

होश आते ही वह भागा—गवर्नमेंट हाउस। तुरन्त भागदौड़ शुरू हो गई। गवर्नमेंट हाउस से लेकर पूरी गणेश खिण्ड की सड़क सर्च-लाइट से जगमगा उठी। एक-एक कोना, झाड़ियों का चप्पा-चप्पा छान लिया गया। परन्तु अपराधी का कोई निशान भी मिला ?

ले० ऐमहर्स्ट की तो तत्काल मृत्यु हो गई थी। मि० रैंड घातक रूप से घायल था। उसके कुछ सास अभी बाकी थे। अत उसे अस्पताल मे दाखिल किया गया।

जिस समय गणेश खिण्ड सडक पर वह काड हो रहा था, उस समय भिडे पास ही किसी चाय-पान की दुकान पर चाय पी रहा था। वास्तव मे वह गोली की आवाज की प्रतीक्षा मे था। ज्योंही "ठाय-ठाय" की आवाज हुई और "रैंड का कत्ल" का शोर उसने सुना। वह वहा से चुपचाप खिसका और गुप्त-मार्ग से लो० तिलक के निवास की ओर गया। वहा तिलक अत्यन्त अधीर हो प्रतीक्षा कर रहे थे। जब भिडे ने सदेश दिया—'काम झाले' (काम हो गया) तो उन्होंने दोनों हाथ सिर से लगाकर चाफेकर-वीरो का मूक अभिनन्दन किया।

वह रात पूना के लिए भयकर अन्धकार-भरी बन गई। उस अन्धकार मे घुली भय, आतक, प्रतारणा की कालिमा इतनी गहरी थी कि सुबह का सूरज भी उसे हटा न सका। सूर्य भी मानो पूनावासियों को लाल-लाल आखो से घूरता-सा लग रहा था। लोग जाग चुके थे पर मन ही मन चाह रहे थे कि सोए ही रहते तो अच्छा था ! क्योंकि चारों ओर अग्रेज सी० आई० डी० के असख्य नेत्र उन्हे घूर रहे थे। हर एक की जुबान पर एक ही वाक्य आता—"रैंड मारा गया !" बस, इन तीन शब्दों के अलावा चौथा शब्द बोलने की न किसीमे इच्छा थी, न ही हिम्मत !

ब्रिटिश दमन-चक्र के भय ने सबके मन की जिज्ञासा ही मिटा दी थी। लोगों ने रैंड के कत्ल से सुख की सास तो जरूर ली, पर इस खुशी को प्रकट करने का साहस किसीमे न था। वे जानते थे कि अब

वध होने वाला है ? पूना पर जो जुल्म रैंड ने ढाए थे, अब उनसे दुगुने मित्रों द्वारा उसके कत्ल का बदला लिया जाएगा। लोगों की आशंका सच निकली।

जब अपराधी का कोई नामोनिशान गणेश खिण्ड सड़क के पास न मिला, तो गवर्नमेंट हाउस को जानेवाली सब सड़कें बन्द कर दी गईं। पूरे शहर की हर सड़क पर नाकेबंदी हो गई। चारों तरफ पुलिस ही पुलिस दिखाई देने लगी। मानो पूना के सब नागरिक रातोंरात पुलिस में बदल गए हों। अब पकड़-धकड़ शुरू हो गई। राह चलते यात्रियों को रोककर पुलिस चौकी पर लाया जाने लगा। वहां पूछताछ का नाटक होता। सन्देह के हाथ वैसे ही लम्बे होते हैं और अब तो पुलिस के पास काफी ठोस कारण भी था। इसलिए निर्दोष, सम्भ्रान्त व सुशिक्षित व्यक्ति भी पुलिस के हाथों अपमानित होने लगे।

दमन-चक्र की इस दहकती आग में अंग्रेज-पिट्ठू अखबारों ने घी डालने का काम किया। अंग्रेजों व एंग्लो-इंडियन अखबारों ने एक स्वर में फैसला सुना दिया—"पूना में पेशवा-शासन स्थापित करने का कुचक्र चल रहा है। मि० रैंड का वध इसी षड्यन्त्र का पहला कदम है।" 'लन्दन-टाइम्स' ने तो यहां तक लिख दिया—"सारा पूना जानता था मि० रैंड का वध होने वाला है। यही कारण है कि इस वध से लोगों के चेहरों पर खुशी व आंखों में चमक आ गई। इस दुर्घटना के जिम्मेदार थे हिन्दुस्तानी अखबार हैं, जिन्होंने जान-बूझकर ऐसे हत्यारों को उकसाया। 1857 की तरह जल्दी ही हिन्दुस्तान में एक और विद्रोह होने जा रहा है। यह कत्ल उसी भयंकर योजना का पहला कदम है…पूना के ब्राह्मण पेशवा-राज्य लौटाने के सपने देख रहे हैं। यह सब उन्हीं की शरारत है। सरकार को चाहिए कि अभी पूना के सब ब्राह्मणों को सरेआम फांसी पर लटका दें।"

इधर अत्याचार की आंधी चल रही थी, उधर मि० रैंड अस्पताल में जीवन और मृत्यु के बीच जूझ रहा था। पांच दिन बीत चुके थे। उसके बचने की अब कोई आशा न थी। उधर हत्यारों का भी कोई सुराग न मिल रहा था। आश्चर्य की बात तो यह थी कि इतने

बड़े कत्ल पर भी पूना में कोई शोक-सभा न हुई। पूना नगर अपने सभा-समारोहों के लिए प्रसिद्ध था। परन्तु इस दुर्घटना पर नगर में विचित्र चुप्पी छाई रही। पूरे पाच दिन बाद भी जब कोई शोक सभा न हुई तो शासक और भी भन्नाए।

आखिर 28 जून को जिला कलेक्टर मि० लैंब ने एक सभा का आयोजन किया। सभा में गिने-चुने लोग ही बुलाए गए। वे या तो अंग्रेज-भक्ति या भय से प्रेरित थे। सभास्थल के घोर सन्नाटे को तोड़ते हुए जिला कलक्टर की आवाज गूजी—"आज से पाच दिन पहले जो दुर्घटना हुई, वह पूना के नागरिकों के माथे पर अमिट कलक है। महारानी के जशन के दिन दो बड़े अफसरों का कत्ल—कितनी शर्मनाक बात है! यह सब किसी भयकर षड्यन्त्र का नतीजा है और इसके पीछे वे नेता और अखबारें है जो ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जहर उगलते रहते हैं। यह हत्या नही बल्कि एक राजनैतिक हत्या है। इसीलिए तो हत्यारों ने इसका दिन महारानी के जशन का चुना। हत्यारों का अभी तक कोई सुराग नहीं मिला। यह आप सबके लिए अच्छा नही होगा। आपकी यह चुप्पी सरकार को ज्यादा देर बर्दाश्त न होगी। जल्दी ही हत्यारों का पता देना होगा। वरन् आपके हक में अच्छा न होगा। अन्त में मैं आपको यह याद दिला देना चाहता हू कि रात के अन्धेरे में छुपकर दो अंग्रेज अफसरों का कत्ल कर देने से ब्रिटिश शासन को खत्म नहीं किया जा सकता।"

इस धमकी के बाद सभा विसर्जित हो गई। लोग पहले से ही भयभीत थे। इस धमकी की चर्चा करते हुए सब और अधिक आतकित हो गए।

कुछ अंग्रेज-पिट्ठुओं ने देखादेखी एक और शोक-सभा का आयोजन किया। इसके आयोजक थे—डा० रामकृष्ण गोपाल भंडारकर। सभा में उपस्थिति न के बराबर थी। तो भी इन सुधारवादी नेताओं ने खूब जोर-शोर से हत्यारों की भर्त्सना की और शासक-वर्ग के साथ पूरा सहयोग व सहानुभूति प्रकट की।

तभी हस्पताल में मि० रैंड का देहान्त हो गया। गोली लगने के

ग्यारहवें दिन उसके प्राण निकले। लोगों ने दबी जुबान से यह भी कहा कि अत्याचारी को शान्तिपूर्ण मृत्यु भी न मिली। उसे अपने कुकर्मों का फल भुगतने के लिए ही ग्यारह दिन जीवित मृत्यु का कष्ट झेलना पड़ा।

ज्योंही यह खबर चाफेकर-क्लब के सदस्यों को पता चली, वे हर्षोन्मत्त हो उठे। किन्तु अफसोस यही रहा कि इस खुशी को वे अब मना न सकते थे। उनका असली साथी दामोदर जो न था। बेशक, अब भी क्लब के सदस्य इधर-उधर किसीके घर मिलते रहते। महामना तिलक से भी भेंट होती रहती।

भिडे ने चुपके से यह सुसंवाद दामोदर व बालकृष्ण को जा सुनाया। दोनों भाई पूना में ही पहले से निश्चित एक कमरे में गुप्त-निवास कर रहे थे। ज्योंही यह खबर सुनी, वे उत्साह में भरकर भिडे से लिपट गए। दामोदर, बोला, "वाह मित्र! ऐसी बढ़िया खबर पर तुम्हारा मुंह लड्डुओं से भर देना''खैर''फिर सही। जय महावीर! अब यह नरपिशाच तुम्हारे हवाले है''पूना को तो उससे छुटकारा मिल गया।" इन शब्दों के साथ उसने महावीर को धरती पर माथा टेक प्रणाम किया।

वर्तमान के आनन्द मे मग्न थे। घर से सम्बन्ध छूटे पूरे ग्यारह दिन हो चुके थे। बेशक उनकी योजना इतनी गुप्त थी कि किसीको उन-पर जरा भी सन्देह न हो सकता था। वे अनेक वार कई-कई दिन बाहर रहते थे। फिर भी गुरुदेव के आदेश से उन्हे तब तक इसी गुप्त निवास मे रहना था, जब तक पूना मे पुलिस की सरगर्मी ठडी न पड जाए।

"दामोदर ! बालकृष्ण ! घर की याद आ रही है ?" भिड़े के शब्दो ने दोनो की विचारतन्द्रा भग की। दोनो के चेहरे मुस्करा उठे। दामोदर बोला, "घर की याद तो आएगी ही, पर मित्र ! वह याद हमे रुलाती नही, हसा देती है। घर वाले भी जानते है कि हम तो मुसाफिर ही हैं—आज यहां—कल न जाने कहा ?···खैर···हा, ऐसे करना, हमारा कुशल समाचार दे आना। पर देखना, कोई मिलने न आए।"

भिडे के जाते ही दोनो फिर विचारमग्न-से बैठ गए।

भिडे जब दामोदर के घर पहुचा, तब साझ का झुटपुटा हो चला था। उसे मालूम था कि इस समय सब पूजा-गृह मे होगे। भीतर से मन्त्र-पाठ का स्वर आ रहा था। वह भी एक भाव से पीछे जाकर बैठ गया। उसके आने से सब सदस्यो में एक हलचल-सी भर गई। सब जानते थे कि वह दामोदर का मित्र था। अतः उसका आना महत्त्वपूर्ण लगा।

आरती की समाप्ति पर उसने मा व पिता जी को प्रणाम किया। दामोदर के पिता व माता ने हर्ष व आशका मे भरकर प्रश्न किया, "बेटा ! अपने मित्रो का भी कुशल समाचार बताओगे ?" उनकी आखे डबडबा आई थीं।

भिडे ने धीरे से उत्तर दिया, "चिन्ता न करें आई ! आपके दोनो बेटे सुरक्षित व सकुशल है।"

"ओह, प्रभु ! तेरा लाख-लाख शुक्र !" सबके चेहरो पर उत्साह-

भरी चमक आ गई।

"कहां हैं वो ?" मां के पूछने पर भिडे बोला, "बस, और कुछ नहीं बता सकता, आई ! उनकी सुरक्षा के लिए अभी कुछ दिन उन्हें गुप्त ही रहना होगा।"

"उनके खाने-पीने का क्या प्रबन्ध है ?" मां से पूछे बिना न रहा गया।

"सब प्रबन्ध हमने किया है—सब ठीक है।"

मां व पिता आश्वस्त हुए। दोनों बहुएं कुछ जलपान की व्यवस्था करने रसोई की ओर गई, तो पीछे-पीछे भिडे भी वहीं चला आया।

"भाभी !" उसके पुकारते ही दोनों ने उन्मुक्त आंखें ऊपर उठाई। उन आंखों को देख भिडे का हृदय द्रवित हो उठा। ये बता रही थीं कि वे उस रात से सुखी नहीं रहीं, जिस रात से उनके स्वामी उनसे बिछुड़ गए थे। चाहे अधरों पर बन्धन था, पर नयन मुखर थे और उनमें बीते समय का एक-एक पल झलक उठा था।

"भाभी ! आप घबरा तो नहीं गई न ?" पूछते-पूछते स्वयं भिडे का स्वर कांप रहा था।

सहज मुस्कान लाकर राधा बोली, "घबराऊं भी क्यों भैया ! आज उनके कारण मेरा मस्तक ऊंचा है। मैं वीर-पत्नी हूं न।"

अब रुक्मिणी भी कहने लगी, "बस, अब मन की विकलता हट गई। वे कहीं भी रहें, ठीक रहें। हमारी भी आयु उन्हें ही मिल जाए।"

भिडे चलने लगा, तो रुक्मिणी पूछने लगी, "भैया ! एक बात बताना…"

भिडे ने पूछा, "क्या ?" प्रश्न के उत्तर देते हुए वह संकोच में लाल पड़ गई। राधा उसके मन की बात समझ मुस्कराते हुए बोली; "उन्होंने कुछ कहा था ?"

उसका संकेत समझ भिडे बोला, "भाभी ! दोनों ने मुस्कराते हुए यही कहा था कि तुम जानती हो कि हम तो मुसाफिर हैं। आज यहां, कल न जाने कहां ?"

वर्तमान के आनन्द में मग्न थे। घर से सम्बन्ध छूटे पूरे ग्यारह दिन हो चुके थे। बेशक उनकी योजना इतनी गुप्त थी कि किसीको उन-पर जरा भी सन्देह न हो सकता था। वे अनेक बार कई-कई दिन बाहर रहते थे। फिर भी गुरुदेव के आदेश से उन्हें तब तक इसी गुप्त निवास मे रहना था, जब तक पूना में पुलिस की सरगर्मी ठडी न पड जाए।

"दामोदर ! बालकृष्ण ! घर की याद आ रही है?" भिडे के शब्दो ने दोनो की विचारतन्द्रा भग की। दोनों के चेहरे मुस्करा उठे। दामोदर बोला, "घर की याद तो आएगी ही, पर मित्र ! वह याद हमे रुलाती नही, हसा देती है। घर वाले भी जानते हैं कि हम तो मुसाफिर ही हैं—आज यहा—कल न जाने कहा ?···खैर···हा, ऐसे करना, हमारा कुशल समाचार दे आना। पर देखना, कोई मिलने न आए।"

भिडे के जाते ही दोनो फिर विचारमग्न-से बैठ गए।

भिडे जब दामोदर के घर पहुचा, तब साझ का झुटपुटा हो चला था। उसे मालूम था कि इस समय सब पूजा-गृह मे होंगे। भीतर से मन्त्र-पाठ का स्वर आ रहा था। वह भी एक भाव से पीछे जाकर बैठ गया। उसके आने से सब सदस्यो मे एक हलचल-सी भर गई। सब जानते थे कि वह दामोदर का मित्र था। अत उसका आना महत्वपूर्ण लगा।

आरती की समाप्ति पर उसने मा व पिता जी को प्रणाम किया। दामोदर के पिता व माता ने हर्ष व आशका से भरकर प्रश्न किया, "बेटा ! अपने मित्रों का भी कुशल समाचार बताओगे?" उनकी आखे डबडबा आई थीं।

भिडे ने धीरे से उत्तर दिया, "चिन्ता न करे आई ! आपके दोनो बेटे सुरक्षित व सकुशल हैं।"

"ओह, प्रभु ! तेरा लाख-लाख शुक्र !" सबके चेहरो पर उत्साह-

भरी चमक आ गई।

"कहा है वो ?" मा के पूछने पर भिड़े बोला, "बस, और कुछ नही बता सकता, आई ! उनकी सुरक्षा के लिए अभी कुछ दिन उन्हे गुप्त ही रहना होगा।"

"उनके खाने-पीने का क्या प्रबन्ध है ?" मा से पूछे बिना न रहा गया।

"सब प्रबन्ध हमने किया है—सब ठीक है।"

मा व पिता आश्वस्त हुए। दोनों बहुए कुछ जलपान की व्यवस्था करने रसोई की ओर गई, तो पीछे-पीछे भिड़े भी वही चला आया।

"भाभी !" उसके पुकारते ही दोनों ने उत्सुक आखे ऊपर उठाई। उन आखो को देख भिड़े का हृदय द्रवित हो उठा। वे बता रही थी कि वे उस रात से सुखी नही रही, जिस रात ने उनके स्वामी उनसे बिछुड गए थे। चाहे अधरो पर बन्धन था, पर नयन मुक्त थे और उनमे बीते समय का एक-एक पल झलक उठा था।

"भाभी ! आप घबरा तो नही गई न ?" पूछते-पूछते स्वय भिड़े का स्वर काप रहा था।

महज मुस्कान लाकर राधा बोली, "घबराऊं भी क्यो भैया ! आज उनके कारण मेरा मस्तक ऊंचा है। मैं वीर-पत्नी हू न।"

अब रुक्मिणी भी कहने लगी, "बस, अब मन की विकलता हट गई। वे कहीं भी रहे, ठीक रहें। हमारी भी आयु उन्हे ही मिल जाए।"

भिड़े चलने लगा, तो रुक्मिणी पूछने लगी, "भैया ! एक बात बताना···"

भिड़े ने पूछा, "क्या ?" प्रश्न के उत्तर देते हुए वह संकोच मे लाल पड़ गई। राधा उसके मन की बात समझ मुस्कराते हुए बोली; "उन्होने कुछ कहा था ?"

उनका संकेत समझ भिड़े बोला, "भाभी ! दोनों ने मुस्कराते हुए यही कहा था कि तुम जानती हो कि हम तो मुसाफिर हैं। आज यहा, कल न जाने कहा ?"

हृदय ने हृदय की भाषा समझ ली। इन शब्दों के पीछे छुपे मार्मिक अर्थ को समझ उनके नयन फिर भर आए !

भिडे को विदा करने वासुदेव दरवाजे तक आया, तो साथ ही चल पडा। काफी दूर आ जाने पर भी जब वह नहीं रुका, तो भिडे रुक गया, "वासुदेव ! घर नहीं लौटना ?"

उत्तर मे धीरे-से सिर हिलाकर उसने कहा, "नहीं !"

"क्यो ?" चकित-सा भिडे बोला। उत्तर मे उमड़ती रुलाई को रोकते हुए वासुदेव कह उठा, "भैया के बिना घर घर नहीं लगता मित्र ! आज मेरी एक बात मान लो—मै आजीवन तुम्हारा कृतज्ञ रहूगा।" कहते हुए उसने भिडे के दोनो हाथ पकड़ लिए।

भिडे समझ गया कि वह क्या चाहता है। पूछा, "क्या ?"

"मुझे एक बार अपने भैया से मिलवा दो—बस !" भिडे 'ना' न कर सका। जब तक दोनो वहा पहुचे, रात का अन्धेरा छाने लगा था।

कमरे मे प्रवेश करते ही वासुदेव अपने भाइयो की ओर यू लपका—जैसे कभी भरत राम-लक्ष्मण की ओर लपककर मिले थे। तीनों परस्पर लिपटे हुए आनन्दाश्रु बहाने लगे। भिडे की भी आखे सूखी न रही थीं।

कुछ क्षणों बाद दामोदर आखे तरेरकर बोला, "क्यो रे वासु ! तुझे किसने यह रास्ता बताया ?"

भिडे के उत्तर देने से पहले ही वासुदेव आहत अभिमान मे बोल उठा, "भैया ! आप दोनो ने मुझे कभी भी अपने साथ नहीं लिया ! न जाने क्यो आपको मुझपर विश्वास नहीं ?"

"विश्वास क्यो नहीं होगा रे ! पर अभी अपना-चेहरा तो देख शीशे मे—अभी मूछे भी नहीं आई···कि···" सुनते ही चारो खिल-खिला उठे।

सहमा दामोदर बोला, "अरे, कुछ लाया भी है या खाली हाथ···?"

भैया का इशारा समझ वासुदेव ने झटपट जेब मे एक बड़ा लिफाफा निकाला, "भैया ! दोनों भाभियों ने आपकी पसन्द की मिठाई मुझे चुपके से थमा दी थी।"

"तू तो बडा छुपा रुस्तम निकला रे !" कहते हुए भिडे ने सराहना से उसे देखा ।

अब सब मिठाई खाने बैठे । ज्यों ही पहला टुकड़ा मुह मे डाला, दामोदर व बालकृष्ण की आंखों से टपटप बूदें गिरने लगीं । अपनी प्रिया के हाथो की बनाई अनेक प्रेम-मनुहारो से भरी वह मिठाई न थी—मानो राधा व रुक्मिणी ही सचमुच सामने आ खड़ी हुई थी । मन ही मन वे समझ चुके थे कि अब शायद प्रत्यक्ष मिलना न होगा···

बहुत देर बातें करने के बाद जब वासुदेव चलने लगा तो दामोदर ने कहा, "वासु ! अब तू अपने को छोटा नहीं समझना । अब तू ही घर में हमारी जिम्मेदारी को निभाना···बाबा और माई का बहुत ध्यान रखना और उन नन्हे वानरो को बहुत मीठे मुक्के लगाना···" कहते-कहते दामोदर के अधर हंस पडे पर आखे भर आईं ।

"भैया ! तुम्हारी सब बातें मानूगा—पर अब एक मेरी भी माननी पडेगी ।"

"वो कौन-सी ?" बालकृष्ण ने हसकर पूछा ।

"अगली बार मुझे अपनी पिस्तौल से ऐसा पुण्य कार्य करने देना ।"

"वाह ! मेरे शेर ! यह हुई न मेरे मन की बात !" दामोदर को लगा मानो उसकी छाती और भी चौड़ी हो गई हो । और वासुदेव—उसके तो पाव मानो धरती नहीं आकाश पर पड़ रहे थे ।

भिडे चकित था—तीनो भाइयो के इस अपूर्व दीवानेपन पर—जहा बलि-पथ पर आगे जाने की तीनों मे होड़-सी लगी थी !

उस रात दामोदर व बालकृष्ण और उनके परिवार के सदस्य बड़े चैन से सोए ! किन्तु पूना की पुलिस की आखों की नींद छिन गई थी । इनमे सबसे बेचैन था, उनका मुख्य अधिकारी—मि० ब्रून ! उसे बम्बई के गुप्तचर विभाग से विशेष रूप मे चुनकर पूना भेजा गया था । उसके साथ कुशल गुप्तचर अधिकारी थे । मि० ब्रून अत्यन्त चतुर तथा योग्य अधिकारी था । उसने आते ही 20,000 रु० के नकद इनाम की घोषणा कर दी और नगर में पुलिस का जाल-सा बिछा दिया । अतिरिक्त पुलिस दस्ते पूना मे आ गए और इनका वार्षिक खर्च दो लाख रु० हर

खर्च टैक्स रूप से पूना नगरपालिका से लिया जाने लगा। इस तरह लोग आर्थिक व मानसिक दोनो रूप से दबाए जाने लगे।

लोकमान्य तिलक ने अनुभव किया कि इस दमन चक्र मे कही जनता का मनोबल बिल्कुल टूट न जाए। अत 'केसरी' के द्वारा उन्होंने जन-मन की भावनाए प्रकट की। उन्होने लिखा—"निस्सन्देह, महारानी विक्टोरिया के हीरक जयन्ती समारोह के दिन दो अधिकारियों की हत्या अत्यन्त खेद का विषय है। किन्तु इसकी आड मे सरकार जो अन्याय व अत्याचार निरीह नागरिको पर कर रही है—उसको न्यायोचित नहीं कहा जा सकता। पूना की पुलिस ही क्या कम थी कि अतिरिक्त पुलिस बम्बई से भेजी गई और उसका पौने दो लाख रु० खर्च टैक्स के रूप के उन नागरिको से लिया जा रहा है जो पहले ही प्लेग व अकाल से अधमरे हो चुके है। यह देखकर तो शक होता है *कि सरकार का दिमाग ठिकाने पर भी है? लगता तो यह है कि* हत्यारे के बदले सरकार की ही बुद्धि भ्रष्ट हो गई है और वह बिना सोचे-समझे काम कर रही है…"

'केसरी' के सम्पादकीय ने जलती आग मे घी का काम किया। मि० ब्रून अपनी असफलता से पहले ही काफी झल्लाया था। उसने तुरन्त प्रमुख अधिकारियों की बैठक बुलाई। मुख्य अधिकारियों के आते ही मि० ब्रून ने बोलना शुरू किया—"कितनी शर्म की बात है कि गुप्तचर विभाग व पुलिस की लबी फौज भी आज तक मि० रैंड के हत्यारे का पता नही लगा सकी। इसका मतलब यह हुआ कि हत्या की योजना बड़े कुशल दिमाग ने बनाई और इसके पीछे अकेला हत्यारा नही बल्कि एक सगठन है। लेकिन वह व्यक्ति और वह सगठन आखिर है कहा? है तो वह पूना मे ही! फिर क्यो आज तक आप उसको ढूढ नही सके?" उसकी प्रश्नसूचक आखें अगारो की तरह सबको घूर *रही थी। सब अफसरो के मुंह बन्द और आखें नीची थी।*

अब ब्रून ने पैंतरा बदला, "अफसोस है आपकी योग्यता पर और स्वामी-भक्ति पर! आप सब बेकार ही सरकार का खजाना खाली करते है। वरन् इतने बडे अफसर का कत्ल हो जाए और किसीको

पता ही न लगे ? मैं पूछता हूं, सी० आई० डी० किस मर्ज की दवा है ? इस कत्ल की योजना पहले ही क्यों नही मालूम की ? बोलिए—बोलिए—यह चुप्पी मेरी बर्दाश्त के बाहर है—" ब्रून की कड़कती आवाज़ सबके दिलो पर हथौड़े-सी चोट करने लगी। सब अन्तर् तक कांप उठे। लेकिन बोले तो बोले क्या ? लाख सिर पटकने पर भी वे हत्यारे का अता-पता न जान सके थे।

इतने में एक अफसर उठा। सबकी नजरें उस तरफ उठ गईं। वह था—बम्बई का गोविन्द पटवर्धन।

ब्रून के चेहरे का तनाव कुछ कम हुआ। बोला, "यस, कहिए।"

पटवर्धन के हाथो में कुछ कागज थे, जिनमें 'केसरी' की प्रतियां अधिक थीं। वह बोला, "सर, बेशक मैं पूना का निवासी नहीं, पर कई दिनों से मैं पूना की गतिविधियो को गहरी नजर से देखता आ रहा हूं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि इस हत्या के पीछे एक बडी योजना थी जिसकी नीव बहुत पहले से रखी गई थी। प्रमाण रूप मैं आपको पूना के दो विशेष उत्सवों—'गणपति उत्सव' और 'शिवाजी उत्सव' की याद दिलाना चाहता हूं।

" सर ! ये दोनों उत्सव देखने मे बड़े निर्दोष और धार्मिक उत्सव लगते है, पर इनकी प्रेरणा कितनी खतरनाक व राजनीतिक है ! गणपति-उत्सव पर बोले जाने वाले एक प्रार्थना-श्लोक की ओर ध्यान दें—" कहते हुए पटवर्धन ने 'केसरी' की एक प्रति निकाली और पढ़ने लगा—"हाय ! गुलामी मे रहकर भी तुम्हें लाज नहीं आती ? इससे अच्छा यह है कि तुम आत्महत्या कर डालो। उफ ! दुष्ट, हत्यारे कसाइयो की तरह गोवध करते है, गोमाता को इस दुर्दशा से बचा लो। मर जाओ, लेकिन पहले अंग्रेजों को मारो तो सही ! चुप मत बैठे रहो। बेकार पृथ्वी पर बोझ मत बढ़ाओ। हमारे देश का नाम तो हिन्दुस्तान है, फिर यहां अंग्रेज क्यों राज करते है ?"

कथन पूरा होते ही सबमें सनसनी-सी फैल गई। सब दबी आवाज़ मे कह उठे, "ओह !"

मि० ब्रून बोला, "सुन लिया आपने ? किस तरह धर्म की आड़

मे बगावत का जहर फैलाया जा रहा है ?"

पटवर्धन फिर बोला, "सर, मैं आपका ध्यान इससे भी महत्त्वपूर्ण 'शिवाजी उत्सव' की ओर दिलाना चाहता हूं। 12 जून को विट्ठल-मन्दिर में जो शिवाजी-उत्सव मनाया गया, उसके सभापति थे—लो० तिलक ! जरा उत्सव की कार्यवाही की रिपोर्ट पर गौर कीजिए—शिवराम महादेव पराजपे ने अपने भाषण मे कहा—आज इस पवित्र उत्सव पर प्रत्येक हिन्दू एवं मरहठे का दिल बासों उछल रहा है। हम सभी अपनी खोई हुई स्वतन्त्रता पाने की चेष्टा मे लगे हैं···यदि कोई हमारे देश पर अत्याचार करता है, तो उसे खत्म कर दो। याद रखो, असन्तोष और विरोध ही जीवन का मूल है। सन्तोष व शाति तो जातियों के जीवन को नष्ट कर देती है। महाभारत पढो और देखो कि हमारे पूर्वजो ने अपने अधिकारो के लिए कितना भयकर युद्ध लडा। लेकिन हम आज विदेशियों के हाथो अपने सब अधिकार खोकर सुख से रोटी खा रहे है। गोरे बूटो के नीचे हमारी स्वतन्त्रता कुचली जा रही है। ऐसे अपमान से मौत कही अच्छी है। उठो और मार कर अपना स्वराज्य वापिस ले लो।"

पटवर्धन सास लेने के लिए रुका। सभा मे पूर्ण सन्नाटा था। वह फिर बोला, "प्रो० जिनसीवाले ने अपने भाषण में विस्तार से बताया कि किस प्रकार विदेशी सरकार ने हमारे धर्म, सभ्यता और सस्कृति पर चोट की है। प्रो० भानु ने शिवाजी के अफजल खा मे मुकाबले की घटना सुनाई और सिद्ध किया कि अफजल खां विदेशी दुश्मन था। अत: उसे चोरी छिपे या धोखे से मारना न्यायोचित था। राजनीतिक हत्या अगर देश या धर्म के लिए की जाए, तो वह हत्या नहीं, पुण्य का काम होता है। फ्रास की राज्यक्राति मे भाग लेने वालों ने इस बात से इन्कार किया है कि वे कोई हत्या कर रहे है। उनका कहना है कि वे रास्ते के काटों को हटा रहे हैं।"

"उफ ! राजनीतिक हत्या पाप नहीं पुण्य है—" दोहराते हुए ब्रून दात पीसने लगा। सब स्तब्ध बैठे थे।

पटवर्धन ने फिर रिपोर्ट पढनी शुरू की—"उत्सव के सभापति

लो० तिलक का भाषण सबसे उत्तेजक था। उन्होंने कहा—क्या शिवाजी ने अफजल खां को मारकर कोई पाप किया? इस प्रश्न का उत्तर महाभारत में मिल सकता है। भगवान श्रीकृष्ण ने तो गीता में अपने गुरु तथा सम्बन्धियों तक को मारने की आज्ञा दी है···यदि चोर हमारे घर में घुस आए और हममें उन्हें पकड़ने की शक्ति न हो, तो हम बाहर से किवाड़ बन्द कर लें और उन्हें जिन्दा जला डालें। इसे ही नीति कहते हैं। ईश्वर ने विदेशियों को हिन्दुस्तान के राज्य का पट्टा लिखकर नहीं दिया है···" वह कुछ पल रुका फिर बोला, "सर, शिवाजी-स्तुति का श्लोक भी ध्यान देने योग्य है। सुनिये—'केवल बैठे-बैठे शिवाजी का गाथा दोहराने से किसीको आजादी नहीं मिल सकती है। हमें तो शिवाजी और बाजीराव की तरह कमर कसकर भयानक कृत्यों में जुट जाना पड़ेगा। मित्रो! अब आपको आजादी के लिए ढाल-तलवार उठानी पड़ेगी। हमें शत्रुओं के सैकड़ों मुण्डों को काट डालना पड़ेगा। सुनो, हम राष्ट्रीय-युद्ध के मैदान में अपने जीवन का बलिदान कर देंगे और आज उन लोगों के रक्त से धरती को रंग देंगे—जो हमारे धर्म को नष्ट कर रहे हैं। हम मार कर ही मरेंगे और तुम लोग घर बैठे औरतों की तरह हमारा किस्सा सुना करोगे।"

इसके साथ ही फाइल बन्द कर पटवर्धन बैठ गया। कमरे में इतनी निस्तब्धता थी कि सूई गिरने की भी आहट सुनी जा सकती थी। सब गुप्तचर अधिकारी मन ही मन पछता रहे थे कि यह सब तो हमने भी देखा-सुना व रिपोर्टों में लिखा था। लेकिन इसका परिणाम इतना भयंकर होगा—इसकी कल्पना क्यों न की? मि० ब्रूइन के तने हुए चेहरे और तेजी से चहलकदमी करते कदमों से सब अन्दाजा लगा रहे थे कि उनके मन में कैसी आंधी चल रही है!

कुछ पल बाद वह रुका और कुछ कहने ही लगा था कि एक और अफसर उठ खड़ा हुआ—"सर, अगर इजाजत दें तो एक सर्वोदय लेख का जिक्र मैं भी करना चाहता हूं···"

"कहो—" ब्रूइन के आदेश पर उसने 'केसरी' का एक अंक निका

और बोला, "15 जून के 'केसरी' मे 'शिवाजी के विचार' शीर्षक कविता मे सम्पादक लो० तिलक ने लिखा—'जिस मातृभूमि को विदेशी चगुल से छुडाकर मैने स्वराज्य स्थापित किया, उसपर आज फिर विदेशी शासन क्यों ? मैं देख रहा हूं कि विदेशी लुटेरे देश का सारा धन यहा से खीचकर ले जा रहे है···गौ, ब्राह्मण व धर्म का अपमान हो रहा है और तुम सब निर्लज्ज-से देख रहे हो ? तुम्हारे हाथ शस्त्र की ओर क्यो नही बढते ?···कैसा आश्चर्य है कि जब प्लेग से हिन्दुस्तानी मरते हैं, तो अग्रेज बेफिक्री से इसे मामूली बात कह टाल देते है···तुम्हारी रियासतें छीन ली गई···चलती गाड़ी से स्त्रिया उठा कर ले जाई गई···और तुम सब मोम के पुतले बने चुपचाप देखते-सहते रहे ? क्या तुम्हारा पौरुष मर गया है ? याद रखो, यह मुझे कभी सहन न होगा···मेरे प्रति इससे बडी कृतघ्नता और क्या होगी ?'," इतना पढने के बाद वह बैठ गया।

ब्रून ने एक बार तीखी नजरो से सबको देखा फिर बोला, "अब यह तो शीशे की तरह साफ दिखाई देने लगा है कि इस हत्या के पीछे क्या प्रेरणा काम कर रही थी। दु ख तो यह है कि हम सोते ही रह गए। नींद तब खुली, जब दुश्मन अपना काम कर चुका था।" ब्रून की आवाज दु ख व अपमान की पीडा से भरी थी।

इसके बाद उसने अफसरो को कुछ विशेष निर्देश दिए और भेज दिया। केवल पटवर्धन को रोक रखा। सबके जाने के बाद उसने पटवर्धन को पास बुलाया—"मि० पटवर्धन, तुम्हारी योग्यता और स्वामी-भक्ति पर मुझे कुछ आशा बंधी है। आज से तुम इस विशेष टुकड़ी के इचार्ज हो। अब इसकी सफलता तुम्हारे जिम्मे है। इसके लिए जितना धन, जो भी सहायक चाहिए, ले सकते हो। हमें हर नई खबर बताते रहना। 'विश यू गुड लक' !" कहते हुए ब्रून ने जोर से पटवर्धन की पीठ पर थपकी दी।

पटवर्धन की आखें कृतज्ञता से झुक गई। पीठ पर पडा भारी हाथ इस क्षण उसे फूल समान लगा क्योकि अग्रेज अफसर की थपकी का मतलब था—भविष्य मे तरक्की ! उसने झुककर सलाम किया,

"थैंक यू, सर !" और उड़ता-सा चल दिया।

अब पुलिस के प्रयत्नों मे बहुत सरगर्मी आ गई। मि० ब्रून के कुशल गुप्तचर अधिकारियों का शिकंजा पूना निवासियों पर कसता गया। जहा-तहा छापे पडने लगे। लोगों के घर मे घुसकर तलाशी के बहाने उनको अपमानित किया जाने लगा। लोग त्रस्त व पीड़ित हो आहे भरने लगे। उनकी मूक पीडा को वाणी दी लो० तिलक ने। 'केसरी' के नये अक के सम्पादकीय मे उन्होंने लिखा—"लगता है कि हत्यारे का तो दिमाग फिरा ही था, लेकिन ब्रिटिश सरकार का दिमाग सचमुच ही फिर गया है। जिस अन्धाधुन्ध अत्याचार की आधी पूना के नागरिकों पर ढाई जा रही है, उसका जोड इतिहास मे शायद ही मिले··· किन्तु सरकार को एक बात समझ लेनी चाहिए कि इससे अधिक आतक से भी वह हत्यारे को पकड नहीं पाएगी—" पढते-पढते दामोदर ठठाकर हस पड़ा। बालकृष्ण ने उत्सुकता से उसकी ओर देखा।

दामोदर अपने उसी मस्त अदाज में बोला, "अरे! पढ न। गुरुदेव ने आखिर मे क्या कसकर तमाचा लगाया इन ललमुहो पर !"

बालकृष्ण 'ललमुहो' शब्द से समझ गया। क्योकि वह जानता था अग्रेज अफसरों की एक छोटी-सी पराजय भी दामोदर का पाव भर खून बढा देती थी।

दामोदर अब उमग मे आ गया था। बोला, "रैड के कातिल को इनकी सी० आई० डी० दस जन्मो मे भी नहीं ढूढ सकती···हम ऐसे कच्चे खिलाडी नहीं है।"

"लेकिन भैया! इस समय सरकार बहुत बौखलाई हुई है, इसीलिए ऐसे सम्पादकीय लिख-लिखकर कहीं गुरुदेव ही न कठिनाई में पड़ जाए—" बालकृष्ण ने आशका प्रकट की।

किन्तु दामोदर का उत्साह हल्का न पडा। बोला, "देख बालकृष्ण! कठिनाइया तो जिन्दगी में वैसे भी लगी रहती हैं। हम जेल में हों या जेल के बाहर—इसमें कोई फर्क नहीं पडता। हां, फर्क तब पडता है जब हम कर्तव्य छोड बैठे हो। अगर कर्तव्य करते हुए कष्ट सहना पड़े,

तो उनका स्वागत खिले माथे ही करना चाहिए।"

भैया की फिलासफी से सहमत होकर भी बालकृष्ण आश्वस्त न था। बोला, "लेकिन, भैया, सोचो तो, अगर गुरुदेव गिरफ्तार कर लिए गए, तो जन-जागरण का कार्य कौन सभालेगा ? इस मृतवत् हिन्दू जाति मे तो उनके 'केसरी' और 'मराठा' के शब्द सजीवनी का काम देते है।"

"बेशक, तुम्हारा कहा सत्य है। पर कर्मयोगी को यह विश्वास होता है कि उसके किए कर्म, ऐसे बीज होते है जो फल लाए बिना नही रहते। लोकमान्य जी ने जो प्रेरणा, जो आग हिन्दू जाति मे भर दी है, उसकी चिनगारिया अब और प्रज्ज्वलित होती रहेगी—कभी बुझेगी नहीं।" कहते हुए दामोदर का मुख अद्भुत तेज मे चमकने लगा।

इससे पहले कि बालकृष्ण कुछ कहता भिडे ने गुप्त द्वार से वहा प्रवेश किया। साथ वासुदेव भी था। दोनो भाइयो ने उत्साह से उनका स्वागत किया, क्योकि इन पिंजराबद्ध शेरो के लिए बाहरी दुनिया से सम्बन्ध जोडने की कडी वे ही थे। उन्हींसे उन्हे पता रहता कि मि० ब्रून और मि० पटवर्धन क्या-क्या दाव-पेच खेल रहे थे।

"आओ, आओ ! बन्दीघर मे आपका स्वागत है। पहले तो केसरी लाओ।" कहते हुए दामोदर ने हाथ बढाया पर यह क्या ? 'केसरी' के बजाय दोनो के नेत्रो मे आंसू टपक पडे।

"क्यो, क्या हुआ ?" चौक उठा दामोदर।

"केसरी कार्यालय 'सील' कर दिया गया और गुरुदेव को गिरफ्तार !" —भिडे ने रुधे गले-से कहा। क्षण-भर सब स्तब्ध रह गए।

सन्नाटा भंग किया दामोदर ने, "लेकिन, तुम्हीने तो परसो बताया था कि गुरुदेव बम्बई गए थे ?"

"हा, हां ! वहीं गिरफ्तार हुए वे—" भिड़े के हर शब्द मे पीड़ा भरी थी।

सब चुप रहे। मानो इस आघात को सहने की शक्ति सचय कर रहे हो। तभी वासुदेव बोला, "भैया ! अब क्या होगा ?"

उसके प्रश्न से चौंककर दामोदर ने उसकी ओर देखा—*18 वर्षीय*

किशोर का मुख मानो निराशा व पीड़ा की साकार मूर्ति बना था। उसे बड़ी ममता उमड़ आई। किन्तु दामोदर की गंभीरता क्षणिक ही होती थी। दूसरे ही पल वह खिलखिला पड़ा। तीनों ने चौंककर उसकी ओर देखा मानो पूछ रहे हों—यह बेमौसमी हंसी किस बात पर?

दामोदर ने आगे बढ़ वासुदेव का चेहरा अपने हाथों में लिया और बोला, "मेरी हंसी का कारण है विधाता की ऐसी बड़ी भूल।"

"कैसी भूल?" तीनों अचकचाकर उसकी बात समझने की कोशिश करने लगे।

"अरे भई, यही भूल तो ब्रह्मा ने वासुदेव को लड़का बनाकर की। इसे तो कोई सुकोमल कन्या बनाते तो ठीक रहता!" बात समझ सब ठठाकर हंस पड़े। पर वासुदेव का मुंह लज्जा से लाल हो गया। उदासी के बादल छट गए। कुछ-कुछ रोष से भर वासुदेव बोला, "क्यों भैया! मुझे लड़की क्यों होना चाहिए था? क्या मुझमें पुरुष की हिम्मत नहीं? क्या मैं कायर लगता हूं? अन्तिम प्रश्न में उसका स्वर आहत अभिमान से भर गया।

दामोदर को इस खेल में अब मजा आने लगा था। बोला, "बेशक, तुम सोलह आने पुरुष हो। पर यह लड़कियों जैसी उदासी और आंसू—ये तो अपनी समझ में पुरुषोचित गुण नहीं हैं।"

"लेकिन, गुरुदेव की गिरफ्तारी···"

"तो क्या हुआ, अरे भाई मेरे! भूल गए वे गीत जो हम अपनी सभा में गाया करते थे—

"साधना पथ पर बढ़ें हम, बन्धनों से प्रीति कैसी?
कण्टक-पथ पग बढ़ाए, कांटों से फिर भीति कैसी?

उन गीतों को तब केवल गाते ही थे न! अब प्रत्यक्ष जीवन में उतारने का अवसर आया है, तो घबराना क्या?"

दामोदर के इन शब्दों ने सबके मन पर छाए निराशा के कुहरे को सूर्य-समान हटा दिया। थोड़ी देर बाद वासुदेव ने पूछा, "भैया! एक बार घर न चलोगे?"

"घर ?" पल-भर के लिए दोनो भाइयों की आखो मे जैसे बादल-सा छा गया। किन्तु उसे दूर धकेल शीघ्र ही उन्होंने भावनाओं पर सयम कर लिया।

"घर तो अब हमारा यही बन्दीघर है, बन्धु ! अब उस घर से ये कदम निकल आए, वापिस कब जाएगे यह तो महावीर ही जाने।" दामोदर के कथन में विनोद भी था और कटु सत्य भी।

चलते हुए वासुदेव के कन्धो को थपथपाकर बालकृष्ण बोला, "घर तो अब तुम्हें ही सभालना है···"

"लेकिन, लड़की बनकर नहीं—" दामोदर ने चुटकी ली।

उत्तर मे लाल होते हुए वासुदेव बोला, "भैया ! आपका सन्देह दूर करूगा—भले ही जान की बाजी लगानी पडे।"

हसते-हसते वे चल पडे।

गोविन्द पटवर्धन की हालत 'साप के मुंह मे छछूंदर' जैसी हो रही थी। मि० ब्रून ने उसे 'भावी तरक्की' का सब्जबाग दिखाकर बेचैन कर दिया था। वह दिन-रात, सोते-जागते इसी मंजिल की ओर पाव बढा रहा था, लेकिन कदम उसके वहीं के वहीं थे। अभी तक वह अपराधियों का पता न लगा पाया था। हत्या ऐसे सुनियोजित ढग में की गई थी कि हत्यारे ने अपने पीछे जरा-भी सूत्र न छोडा था, जिसके सहारे आगे बढा जाता। इसके लिए तो उसकी बुद्धि सचमुच हत्यारे का लोहा मान मन ही मन उसकी प्रशसा करती। परन्तु प्रतिदिन साय-काल जब मि० ब्रून से उसका सामना होता तो उसके व्यंग्य-भरे प्रश्न पर—"वेल, नो न्यूज मि० पटवर्धन ?"—वह कटकर रह जाता।

आखिर एक दिन उसकी तरक्की का रास्ता खुल गया। चाफेकर क्लब के अनेक सदस्यों मे से एक था—नीलकठ द्रविड। वह बालकृष्ण का साथी रह चुका था। अतः उसे इस हत्या की सब योजना का पता था। एक दिन बातों-बातो मे उसके मुह मे यह राज निकल गया जिसका लाभ उठाया उसके बड़े भाई गणेशशंकर द्रविड़ ने। उसने छोटे

भाई को फुसलाकर दामोदर और बालकृष्ण के छिपने का स्थान भी पता कर लिया। बीस हजार रु० का इनाम उनके सामने था, उधर 'तरक्की' पटवर्धन की आंखों को चुधिया रही थी।

अंधेरी काली रात थी। वही सन्नाटा'''वही कालिमा जो 22 जून की रात की थी—कुछ-कुछ वैसा ही वातावरण आज रात दामोदर को लग रहा था। आज उसकी मानसिक शान्ति व सहज हंसी लुप्त-सी थी। न जाने क्यों? वह बार-बार स्वयं को संयत करता—कभी बालकृष्ण से कोई बात करके—कभी ज़ोरों से कोई गीत दुहराकर—परन्तु बार-बार गीत की कड़ी टूट जाती।

"बालकृष्ण! आज मुझे क्या हो रहा है? क्या विचित्र-सी अशान्ति अनुभव हो रही है?" कहते-कहते दामोदर ने आंखें बन्द कर लीं। बालकृष्ण पहले से ही उद्विग्न था, बोला, "बिलकुल यही हाल मेरे मन का भी है भैया! लगता है कोई अनिष्ट होने वाला है'''"

अभी शब्द उसके मुंह में ही थे कि गुप्त-द्वार पर आहट-सी हुई। 'भिडे आया होगा'—यह सोच दामोदर उधर देखने लगा। गुप्त मार्ग से भिडे के स्थान पर द्रविड़ का चेहरा देख, दामोदर कुछ चकित हुआ। बालकृष्ण कमरे के अंधेरे कोने में था। "अरे, तुम!" कहते हुए दामोदर उठने लगा। परन्तु बालकृष्ण ने द्रविड के पीछे किसी अन्य की परछाईं भी देखी। अभी तक उसपर द्रविड की नज़र न पड़ी थी। बिजली की कौंध-सा लपककर बालकृष्ण पिछले दरवाजे से पीछे हटा और बाहर की खिड़की से कूद अंधेरे में बेतहाशा भाग उठा।

जब तक दामोदर कुछ समझे, चीते-सा झपटकर पीछे खड़ा पटवर्धन आगे बढ़ा—"यू आर अन्डर एरेस्ट मि० चाफेकर!" और उसके हाथों में हथकड़ी डाल दी।

दामोदर उठ खड़ा हुआ। एक ओर द्रविड़ दूसरी ओर पटवर्धन—उसने जलती हुई आंखों से दोनों को देखा और दांत पीसते हुए बोल उठा, "तो तुम हो निकृष्ट देशद्रोही! अरे विधर्मियो! देश के दुश्मनों के हाथ अपना धर्म, मान सब बेचकर भी तुम्हारा मन नहीं भरा? मां के हाथ-पांव की जंजीरें काटने वाले के हाथों में जंजीरें डालते हुए

तुम्हे शर्म भी नही आती ?"

प्रत्युत्तर में द्रविड तो भीगी बिल्ली-सा बाहर खिसक गया। दामोदर की प्रखर बातों को सुनने की शक्ति उसमे न थी। पटवर्धन ने व्यग्यपूर्वक कहा, "हत्यारो का सही स्वागत ये जजीरे ही करती है···"

"हत्यारे···? खबरदार! जो यह शब्द दुबारा प्रयोग किया। हत्यारे तुम हो, जिन्होने चद चादी के ठीकरो पर अपना दीन-धर्म, देश, समाज सब कुछ बेच डाला है। हमने तो उस नर-पिशाच रैंड के खून से उन अनगिनत निर्दोष देशवासियो के खून का छोटा-सा बदला लिया है। यह तो आरम्भ है, आरम्भ! अभी देखना कितना और मलेच्छ-रक्त बहाया जाएगा—खून की नदी बहेगी नदी—मि० पटवर्धन। और उसमे उन सबके नरमुण्ड तैरते मिलेंगे—जिन्होने इस देश पर जुल्म किया है!"—दामोदर की रौद्र मूर्ति देख पल-भर के लिए पटवर्धन का वज्र हृदय भी सहम गया। उसे लगा जैसे हथकड़ी मे बन्दी दामोदर इससे कही ज्यादा स्वतन्त्र—और महान है जबकि वह बहुत नीचे ग्लानि व विनाश के गड्ढे मे खड़ा सिर्फ एक बौना है!

तभी अंग्रेज सैनिक की चाबुक की आवाज गूजी—"चलो" और "जय महावीर" का प्रिय घोष कर दामोदर आगे-आगे चल दिया। उसे इस बात की सतुष्टि थी कि बालकृष्ण बच निकला था। कमरे से बाहर निकलने से पहले पटवर्धन ने चारो ओर तलाशी ली और पूछा, "तुम्हारा भाई बालकृष्ण कहां है?"

"मालूम नहीं—" दामोदर का चुनौती भरा स्वर सुन पटवर्धन तिलमिलाकर बोला, "बहुत चमक रहे हो···जब फासी का फन्दा सामने दिखाई देगा, तब सब चमक मिट जाएगी।"

उत्तर मे दामोदर अट्टहास कर उठा, "फासी! फासी से डरकर मुरझा जाने वाले चूहे हम नही है पटवर्धन! हमे तो इसका इन्तजार था।"

सब भौचक्के-से उस विचित्र सिरफिरे देशभक्त को देखने लगे। जिसे फासी का भी भय नहीं, उसे अब और क्या कहा जाए? पटवर्धन ने अब चुप ही रहना ठीक समझा। आगे-पीछे पुलिस मे घिरा मस्त

चाल मे चलता दामोदर यू लग रहा था मानो शिव-शभू दूल्हा बन-कर जा रहे हो !

'रैंड का कातिल पकड़ा गया'—पूना ही नहीं पूरे महाराष्ट्र मे यह खबर आग की तरह फैल गई। दामोदर चाफेकर का नाम सबकी ज़बान पर था। इसे सुनते ही सरकार और सरकारी-पिट्ठुओं के अलावा सबके मन को गहरा धक्का लगा। लो० तिलक की गिरफ्तारी से हताश लोग अब और भी निराश हो गए। सब जानते थे कि इसका परिणाम क्या होगा ?

"मा ! मा ! भैया गिरफ्तार···" आधी की तरह घर मे घुसते ही वासुदेव चिल्लाया और कटे वृक्ष-सा मा की गोद मे गिर पडा। राधा व रुक्मिणी भी भागती-सी आई। ज्यो ही बात उनकी समझ आई, दोनों मूर्च्छित हो गईं।

मा ने वासुदेव को गोद से उठाकर उसके आसू पोछे—अपनी उमडती रुलाई को रोका और बोली, "बेटा ! बस, अब आसू नही बहाना···इस कठिन सकट मे ही तो धैर्य की परीक्षा होती है। उठ, पहले अपनी भाभी को होश मे ला ! अब हमे दामोदर और बालकृष्ण की अमानत की संभाल करनी है।" मां के धीर-गंभीर स्वर ने वासुदेव को झिझोड़-सा दिया। वह तुरन्त उठा और पानी लाकर भाभियों को होश मे लाने लगा।

होश मे आते ही दोनो आहत हिरणी-सी चीखकर मा के गले लग गईं···रुलाई के वेग से उनकी कोमल काया यू काप रही थी जैसे तूफान मे बेल !

मा अपनी सिसकी को मन ही में दबाकर स्नेहभरा हाथ उनपर रखे थी। बन्द आखो से स्वयमेव आसू बहे जा रहे थे। वाणी मूक थी—शब्द असहाय थे। क्या कहे—कहने को कुछ न था।

ऐसे कितना ही समय बीत गया। तभी बाहर आहट हुई और भिड़े के साथ वासुदेव के पिताजी ने प्रवेश किया। आज पहली बार वे भिड़े

का सहारा लेकर चल रहे थे। एक पल मे ही मानो वे बूढे हो गए थे। ऐसे मूक भाव मे वे कभी घर में प्रवेश न करते थे। सदा उनके होंठों पर कोई न कोई मन्त्र या भजन के बोल रहते, जिन्हे मधुर स्वर में गुनगुनाते वे आते, तो ऐसा लगता जैसे साकार भक्ति-रस ही आ रहा है। पूरा घर भक्ति-भावना से सराबोर हो उठता। तभी तो दामोदर ने अपने बाबा का नाम रखा था—'साकार मन्दिर !'

किन्तु आज उनका स्वर मूक था और नेत्र अश्रु-सिंचित ? क्योंकि उनका मन-मन्दिर आज मग्न हो चुका था'''पूजा बिखर चुकी थी। बेशक दामोदर व बालकृष्ण अनेक बार ऐसे खतरनाक कामो मे फस कर कई-कई दिन घर से बाहर रहा करते थे। परन्तु तब वे स्वतन्त्र सिह की तरह होते थे और बाबा जानते थे कि उनके नर-शार्दूल बेटो को कोई हानि नही पहुंचा सकता था। किन्तु आज तो वे बन्दी थे और वह भी अपने चिर-शत्रु अंग्रेजो की कैद में !

मा अन्नपूर्णा दोनो बहुओं को यू आचल की छाव मे लिए बैठी थी जैसे कपोती अपने पखो तले बच्चो को छुपा लेती है। वासुदेव नन्हे केशव और माधव को गोद मे उठाए खड़ा था—बच्चे भी सबको व्याकुल देखकर आकुल थे। बाबा को देखते ही वे भागते हुए उनके पास जा पहुचे—"बाबा ! बाबा ! मा क्यों रो रही है ? आप भी रो रहे है ?"

दोनो को गोद मे लिए बाबा वही बैठ गए। फिर स्वय को सभाल-कर बोले, "बेटे ! तुम्हारी मा को चिट्ठी आई है न कि तुम्हारे पिता व चाचा जी को पुलिस पकड ले गई'''" कहते-कहते उनका गला फिर रुध गया।

ये शब्द सुन कर माधव तो चुप-सा रह गया—कुछ समझा—कुछ नहीं। परन्तु केशव आयु मे बडा और बुद्धि मे भी तीव्र था। दामोदर का तेजस्वी रूप उसमें जो था। उसके चेहरे से बाल सुलभ कोमलता की जगह कठोरता झलक उठी। हवा मे मुट्ठी लहराते हुए गर्ज उठा—"तो आप क्यो रोते है बाबा ! मुझे पिताजी ने पिस्तौल चलाना सिखाया है'''मैं सालें लालमुंहों को यू 'शूट' कर दूगा और उनको छुडा लाऊगा'''" नन्हे केशव की यह वीर-मुद्रा देख सब पल-भर के लिए

अपना दुःख भूल उसे देखने लगे। अणपूर्णा ने खींचकर उसे छाती में लगा लिया। बोली, "शाबाश ! मेरे बहादुर लाल ! है तो दामोदर का ही बेटा ! यह कोई कम थोड़ा होगा ! 'साले ललमुहे'—शब्द तो देखो—जैसे दामोदर ही बोल रहा हो।" कहते हुए मा मुस्कराए बिना न रही।

नन्हे माधव ने सोचा कि भैया ही सबकी तारीफ पा रहा है। वह क्यों पीछे रहे ! हर बात में वह उसीका अनुसरण तो करता था। सो अब भी बोल पड़ा, "मा ! मेरे पास भी पिस्टल है, मैं भी छूट करूंगा···"

अब तो राधा व रुक्मिणी भी मुस्कराए बिना न रहीं। मा बोली, "देख तो, तुम सबसे ज्यादा हिम्मत तो मेरे नन्हे बेटों ने दिखा दी ! उठो, उठो ! आंसू पोंछ डालो ! वीर वधुओं की आंखों में आंसू नहीं सुहाते।"

राधा और रुक्मिणी ठंडी सांस भरकर उठीं और भीतर चली गईं।

अब सबने उत्सुकता से भिडे की ओर देखा। भिडे अब तक इस परिवार के विलक्षण दुःख-सुख के भाव-सागर में डूबता-तैरता-सा स्वयं को भूला हुआ था। अब उसने सब बात बताई, "मा ! आपको शायद पता नहीं कि बालकृष्ण भैया भाग निकले···"

"अच्छा !" सबको सुखद आश्चर्य हुआ क्योंकि वे समझ रहे थे कि दोनों साथ-साथ थे इसलिए दोनों ही पकड़े गए होंगे।

"किन्तु इन मलेच्छों के अगणित सिपाही उसके पीछे लगे होंगे। न जाने कहां-कहां भागता फिरेगा···" बाबा ने ठंडी सांस लेते हुए कहा।

"किन्तु भैया ! एक बात समझ नहीं आ रही···"

वासुदेव की बात पर प्रश्न सूचक दृष्टि से देखते हुए भिडे ने पूछा, "क्या ?"

"यही कि भैया के गुप्त स्थान का पता उन्हें कैसे लगा ? वहां तो हमारे दो चार विश्वसनीय मित्र ही गए थे न !"

"विश्वसनीय मित्र !" भिडे का स्वर व्यंग्य से भर उठा, "अरे,

यह उन्हीं विश्वसनीय मित्रों का ही द्रोह था। वरन् उस गुप्त स्थान का पता तो ब्र न के सिपाही सात जन्मों तक न लगा पाते !"

"क्या मतलब ? किसका काम था यह ? मुझे उसका नाम बताओ—" क्रोध से वासुदेव की आवाज थरथरा उठी। मा व बाबा भी उत्तेजित हो उठे।

भिडे बोला, "तुम्हें याद है अपने क्लब का वह सदस्य गणेशशकर द्रविड का छोटा भाई—नीलकठ द्रविड ?"

"हा, हा ! क्या उसका काम है यह ?" उत्तेजना मे वासुदेव की नस-नस फडकने लगी थी।

"हा, उसी निकृष्ट का !"

अब तो वासुदेव की मुट्ठिया यू कस गईं मानो अभी द्रविड के सिर को पीस ही डालेंगी। लाल-लाल आखो से शून्य को घूरता हुआ वह आहत-सिंह सा पाव पटकने लगा।

तभी मा का आश्चर्य मे डूबा स्वर उभरा, "पर बेटा ! द्रविड तो बालकृष्ण का अच्छा मित्र था। कई बार घर भी आया था।"

"हा, मा जी ! *वह था तो बडा आत्मीय तभी तो मेरे साथ एक* बार बालकृष्ण को मिलने भी गया था। परन्तु न जाने कैसे बातों मे *उसके मुह से यह भेद निकल गया और उसके बडे भाई ने 20 हजार रु०* के लालच मे पड यह बात मि० पटवर्धन—सी० आई० डी० इचार्ज को बता दी—बस, फिर क्या था···सर्वनाश हो गया।" भिडे के शब्द पश्चाताप मे डूबे थे।

यह सुन सब अतीव वेदना से स्तब्ध रह गए। धीरे-धीरे मा का विषाद मे डूबा स्वर उठा, "इस देश का सर्वनाश सदा अपनों से ही होता आया। कभी जयचद, कभी सूर्याजी पिसाल और आज द्रविड़ और पटवर्धन—इन देशद्रोहियों की परम्परा कभी टूटी नहीं।"

"लेकिन अब टूटेगी मां ! मैं जब तक इन गद्दारों का रक्त न बहा लूं, तब तक चैन न लूगा—मुझे दामोदर *भैया की सौगन्ध !"* वासुदेव का वज्र-निश्चय सबको दहला गया।

"क्या कहता है रे तू···दीवारों के भी कान है आजकल···" व्याकुल-

सी मा ने झपटकर वासुदेव के मुह पर हाथ रख दिया। पर दूसरी हथेली से अपना मुंह ढाप मां फूट-फूट कर रो उठी। इन आंसूओ मे मा की ममता थी या स्वाभिमान का गौरव—कौन जाने !

भीतर रसोई में राधा व रुक्मिणी आसू पोछती खाना बना रही थी। पास ही केशव और माधव खडे थे। वे तब से अपनी नन्ही पिस्तौल लिए आगन मे अदृश्य शत्रुओ पर निशाने ही लगा रहे थे। अब भूख लगी, तो रसोई मे आ गए।

खाना खाते-खाते केशव बार-बार आख उठाकर मा की ओर देख लेता। हमेशा की तरह आज न मां बात कर रही थी ना ही चाची ! बस जब-तब दोनों ठडी सांस भरती और आसू पोछती।

एकाएक केशव थोडा-सा खाकर उठ खड़ा हुआ। क्यो ? "खाना क्यों छोड दिया ?" चौककर राधा ने उसकी ओर देखा। माधव भी खाना छोड उठ बैठा।

रोप भरे स्वर मे केशव ने उत्तर दिया, "मा ! न तुम बात करती हो ना चाची जी हसती है—मुझसे नही खाया जा रहा···?"

दोनों को पकड फिर से बिठाते हुए राधा कुछ खीझ भरे स्वर मे बोली, "आज भी तुझे हसने-बोलने की सूझ रही है···?"

उत्तर मे बडे-बूढों-सा गभीर बन केशव बोला—"अब समझ आया पिता जी क्यों मुझसे कहा करते थे—केशव ! तू लडकी-सा कमजोर दिल न रखना—बस, झट रो पडे। महावीर बनना—महावीर !" कहते-कहते केशव जब ताल ठोंककर सीधा खड़ा हुआ, तो राधा की धुंधली आखो के आगे जैसे दामोदर आ खडा हुआ। मुह मे आचल देकर रुलाई दबाते हुए उसने केशव को वक्ष से लगा लिया और जाने कितनी देर बेसुध-सी बैठी रही। रुक्मिणी भी माधव को छाती से लगाए स्मृतियो के सागर मे डूब रही थी।

जैसे शिकार हाथ मे आते ही शिकारी उसे मिटा देने की जल्दी में होता है, वैसे ही अब ब्रिटिश सरकार दामोदर को शीघ्र सजा देने की

जल्दी मे थी। उसे नजरबद कर जल्दी ही अदालत का नाटक शुरू किया गया। दामोदर से पूछा गया, "तुम कौन-सा वकील करना चाहते हो ?"

प्रत्युत्तर मे ठहाका लगाते हुए दामोदर बोला, "तुम्हारी झूठी अदालत से न्याय की आशा रखने वाला मूर्ख मैं नही हू। इसलिए वकील करने से क्या लाभ ? मैं अपना वकील खुद बनूगा।"

जेल अधिकारी इस विचित्र कैदी को देख-सुनकर दातो तले उंगली दबाते। जिन अग्रेज अधिकारियो के सामने बडे-बडो को उन्होने हाथ जोडते व कापते देखा था, उनकी यह युवक हसी-सी उडा देता था ! न उसके कभी हाथ जुडते, ना ही उसका ऊचा मस्तक कभी झुकता। आश्चर्य तो यह कि उसे अपने भविष्य की चिन्ता भी कभी न सताती। हा, मुट्ठी भीचकर कभी-कभी यह बोलते जरूर सुनाई देता—"एक बार बस छूट जाऊ—तो उस देशद्रोही को सबक सिखा दू !"

जब पहली बार दामोदर को अदालत मे पेश किया गया, तब जेल से लेकर अदालत के दरवाज़े तक नर-मुण्ड ही नर-मुण्ड नजर आ रहे थे। लोग उस अद्‌भुत वीर की एक झलक पाने को बेचैन थे, जिसने पिस्तौल से उस ब्रिटिश सरकार को चुनौती दी थी, जिसके राज्य मे सूर्य भी छुपने का साहस न रखता था।

हथकडी बेडी में जकड़ा दामोदर कठोर पहरे मे घिरा जेल में बाहर निकला तो सैकडो आखो ने उसका मूक अभिवादन किया। पुलिस के आतक से हर एक का मुह बन्द था—पर आखो मे जो श्रद्धा और प्रेम की भाषा लिखी थी, वह दामोदर ने पढ ली। इसलिए तो *और भी उमग मे भर उसने हथकड़ियो वाले हाथ ऊचे किए और* चिल्लाया—"जय बजरंगबली ! जय भारत !" प्रत्युत्तर में सबके हृदयो से पुकार उठी—"जय भारत !"

अदालत का कमरा भी खचाखच भरा था। सरकारी वकील ने दामोदर पर रैंड के कत्ल का अभियोग सिद्ध करने के लिए बहस शुरू की। अनेक झूठे गवाह पेश किए गए। सच्चा गवाह कहा से आता ? चूकि किसीने भी दामोदर को हत्या करते हुए न देखा था। अतः

कत्ल का अभियोग उसपर सिद्ध न हो सकता था। ब्रिटिश न्यायालय की इस झूठी कार्यवाही को चुनौती कौन देता ? दामोदर सब कार्यवाही को मूक दर्शक बन देख रहा था।

किन्तु तब वह विचलित हो उठता, जब उसकी नजर गवाहों के बीच खड़े द्रविड भाइयों पर पड जाती। उस क्षण उसकी आँखें अंगारों-सी सुर्ख हो जातीं। द्रविड़ भाइयों को लगता कि न जाने कब उनकी गर्दन दामोदर की वज्र-मुट्ठी में चकनाचूर हो जाए ! पुलिस से सुरक्षित भी वे कांप-कांप उठते ! जब दर्शकों में दामोदर अपने मित्रों और वासुदेव को देख लेता, तो उसके अधरों पर मुस्कान और आंखों में नमी भर आती। वासुदेव अपने साथ घर से किसीको न लाया था। भैया को यू हथकडी बेडी में जकड़े देख उसका वज्र-हृदय भी चीत्कार कर रहा था—तब भला वे कैसे सहन करते ! जब-जब भैया की आग्नेय दृष्टि द्रविड की ओर उठती, तब-तब वासुदेव मन ही मन अपनी प्रतिज्ञा दोहराता।

"मि० दामोदर ! तुम्हें कुछ कहना है ?" न्यायाधीश की आवाज में दम्भ व व्यंग्य टपक रहा था।

दामोदर हंसा। उस हंसी में छुपी चुनौती थी मानो वह रहा हो—'मैं तुम्हारे सामने झुकने वाला नहीं।'

दामोदर के बोलने से पूर्व चारों ओर निस्तब्धता छा गई। मनुष्य तो क्या जैसे दीवारें भी जानना चाहती थीं कि उसके मन में क्या है ?

दामोदर ने शपथ ली और सरकारी वकील की ओर देखता हुआ बोला—"श्रीमान् ! आज की इस अदालती कार्यवाही को देख मुझे बचपन में सुनी कपटी बन्दर और भोली बिल्लियों की कहानी याद हो आई। उस कहानी के बन्दर की तरह ब्रिटिश अदालत ने वादी-प्रतिवादी को खूब बढ़िया धोखा दिया है—न्याय की ओट में अन्याय बांटा है..."

"स्टाप दिस नानसेंस ! तुम अदालत का अपमान कर रहे हो ?" ब्रिटिश न्यायाधीश का न्याय-दंड गर्ज उठा।

किन्तु दामोदर की आवाज उससे भी अधिक ऊंची उठी, "मैं मुझे

कह रहा हू और सच कहने से तुम मुझे तब तक रोक नही सकते जब तक तुम्हारी अन्धी अदालत मुझे फासी न दे दे'''तुम्हारा मुझपर कत्ल का अभियोग झूठा है, क्योंकि तुम्हारे पास कोई सबूत नही, कोई गवाह नहीं जो कत्ल को सावित कर सके—" दामोदर के कथन की सच्चाई को सबने सिर हिला कर माना।

वह कहता गया, "लेकिन मैं ऊची आवाज से घोषणा करता हू कि मैंने पूना के नर-पिशाच रैंड को अपने हाथो यमलोक भिजवाया। परन्तु इसे मैं *कत्ल नही, पुण्य-कार्य कहूगा। क्योंकि जिस निर्दयता और* दुष्टता से रैंड और उसके साथियो ने निरीह जनता पर अत्याचार किए, उसका बदला बस खून ही था और वह खून मैंने किया। मुझे इसपर गर्व है!" कहते हुए दामोदर ने सिर तानकर न्यायाधीश की ओर देखा। वेशक वे दांत पीस रहे थे, पर मन ही मन उन्हे इस कातिल से *भय की कपकपी अनुभव हुई।*

दामोदर फिर बोला, "आज मैं ब्रिटिश अधिकारियों को कुछ और चौकाने वाली बातें बता रहा हू जिन्हें आज तक तुम्हारी पुलिस और सी० आई० डी० न जान सकी थी—" इसपर सब पुलिस व सी० आई० डी० अधिकारी चौकन्ने हो सुनने लगे। दामोदर की दबग आवाज गूजी —"*वो मैं ही था, जिसने वसुदेव पटवर्धन, दुमन्ना कुलकर्णी, थोरट और* वेल्निकर जैसे अनेक ईसाइयो और सुधारकों की पिटाई की थी! मैंने ही युनिवर्सिटी पण्डाल मे आग लगाई थी। बम्बई मे विक्टोरिया के बुत पर कोलतार भी मैंने ही पोती थी और जूतो का हार भी मैंने ही पहनाया था!" इस सत्य उद्‌घाटन से सरकारी अधिकारियों मे सनसनी-सी फैल गई। दामोदर मुस्करा रहा था जबकि सी० आई० डी० अधिकारियो के चेहरों पर कलिमा छा गई थी।

दामोदर फिर बोला, "तुम्हारी सब ताकत, सब चतुराई भी मेरा पता न पा सकी थी—अब भी मुझे तुम पा नही सकते थे लेकिन अफसोस अपने ही दोस्त दुश्मन बन बैठे! फिर भी मुझे खुशी है कि मेरे हाथो मेरे देश की सेवा हुई! मैं बता देना चाहता हू ब्रिटिश सरकार को कि अगर वह इसी तरह अन्धी-बहरी बनकर भारतीयो पर अत्याचार

करती रही, तो वह दिन दूर नहीं जब गली-गली में, नगर-नगर में अंग्रेज़ों के खून की होली खेली जाएगी···जय भारत ! जय महावीर !"

सबके हृदय कंपाता हुआ दामोदर चुप हो गया। सब नजरें उसकी ओर लगी थीं—कुछ त्रस्त थीं और कुछ आश्वस्त !

शीघ्रता में अदालत बर्खास्त हुई और पुलिस उसे लेकर इस तेजी से चली मानो उन्हें डर था कि रैंड का कातिल कहीं उन्हें भी यमलोक न पहुंचा दे। जाते-जाते दामोदर ने एक बार फिर आंखें तरेरकर उधर देखा, जिधर द्रविड़ भाई सिकुड़े-से खड़े थे। दूसरे ही क्षण उसके सामने वासुदेव और अन्य मित्र आ गए—दूर से आंखों-आंखों में उन्होंने उसे कहा—'शाबाश ! तुम्हारे अधूरे काम को हम पूरा करेंगे—तुम निश्चित रहना।'

दामोदर तो निश्चिंत ही था। चिन्ता व निराशा उसके पास अधिक देर न टिक पाती। वह तो मानो प्रचंड सूर्य था, जिसके आस-पास बस आग ही आग थी। कभी-कभी सूर्योदय या सूर्यास्त की ठण्डक जरूर दीखती परन्तु अधिकांश में वह प्रखर आग का गोला ही था। इस सनसनीखेज बयान का नतीजा वह खूब जानता था। पर उसने गीता के कर्मयोग को सचमुच जीवन में उतार लिया था कि—'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्' इसलिए उचित काम करने के बाद वह फल की चिन्ता न करता था।

कुछ ही दिनों बाद फिर अदालत का नाटक दोहराया गया। उसमें फैसला सुनाया गया कि दामोदर चाफेकर पर रैंड की हत्या का आरोप तो प्रमाणित नहीं हुआ लेकिन उसे हत्या में सहयोग या प्रोत्साहन देने के आरोप में फांसी की सजा दी जाएगी।

इस फैसले से दामोदर को न आश्चर्य हुआ ना ही दुःख। वह इसके लिए शायद उसी दिन से तैयार था, जिस दिन उसने पिस्तौल का निशाना बांधा था। किन्तु उसके मित्रों, परिवार और नगर-निवासियों को गहरा धक्का लगा। सबसे बड़ा आघात था—लो० तिलक को, जो उसी जेल में बन्द थे, जहां दामोदर था। उनके आग्रह पर मित्रों ने हाईकोर्ट में अपील की। किन्तु जैसा अनुमान था—दामोदर की सजा कम न हुई।

चाफेकर-सदन मे शायद ऐसी काली, भयावनी रात पहले न आई थी। आज सायं आरती-वेला मे पूजा-घर मे भयंकर सन्नाटा छाया था, जिसमें रह-रहकर उठने वाली सिसकियां ही सुनाई दे रही थी। कोई मन्त्र नहीं···आरती नहीं। बस, मौन ही आज आरती बना था! बहुत देर कोई नहीं बोला। धीरे-धीरे बाबा उठे, "अच्छा प्रभु! तेरी ही इच्छा पूरी हो—" कहते हुए प्रणाम कर बाहर चले गए। वासुदेव पहले ही केशव और माधव के साथ बाहर घूम रहा था। अब मा ने राधा को हृदय से लगाकर आसू पोंछते हुए कहा—"बेटी! अब जी भर कर रो ले ताकि कल कोई आंसू न निकले।"

मा का सकेत समझ राधा और ज़ोर से रो उठी। कल उसे अपने सर्वस्व से मुलाकात करने जाना था—अन्तिम मुलाकात! कैसे देखेगी वह अपने जीवन-धन को···जिसे छूने का भी उसे अधिकार नहीं रहा! कल तो देख भी लेगी, पर उसके बाद उसका सर्वस्व कहा छुप जाएगा? कहा?··· और उसे लगा मानो धरती आकाश घूमने लगे हो···और वह कहीं अतल मे डूबती जा रही है···अब जो मूर्च्छा राधा को आई तो पूरी रात ऐसे ही बीती! एक ओर वैद्यराज बैठे रहे—दूसरी ओर मा! उस रात परिवार ने बस आंखों मे ही काटी। घर मे केवल मा और वासुदेव ही धैर्य धारण कर सब काम चला रहे थे। न राधा को अपनी होश रही थी, ना ही रुक्मिणी को। बाबा तो बस जैसे इस ससार से ही विरक्त हो गए हों। बस, मूर्तिवत् आखे मूदे बैठे रहते। खाना-पीना भी प्राय: छूट-सा गया था। इस मृतवत् परिवार मे जीवन डालने वाली थी—मां! उसका हृदय जैसे वज्र का बन गया था। वह हर पल किसी न किसी काम मे व्यस्त रहती या किसी सदस्य की परिचर्या मे। लगता था मा ने अपनी पीड़ा की गठरी बाध कहीं रख दी थी, जिसे खोलने की अभी उसे फुर्सत न थी।

"कैदी दामोदर चाफेकर! चलो, तुम्हारी मुलाकात आई है—" ध्यान-मग्न दामोदर की तन्द्रा टूटी। देखा—सामने वार्डर खड़ा कोठरी

का ताला खोल रहा था। वह उठा और कोठरी से बाहर मुलाकात के लिए निश्चित कमरे की ओर चल पड़ा। 'मुलाकात' शब्द से उसके अणु-अणु के सोये तार झंकृत हो उठे थे। आज घर से निकलने के बाद पहली और आखिरी बार वह अपने परिवार से मिलने वाला था। कैसे मिलेंगे सब? मां तो शायद दिल पक्का किए होगी पर राधा? वह तो चार दिन की जुदाई में ही रो-रोकर आंखें लाल कर लिया करती थी—अब पूरे जीवन की जुदाई कैसे सहेगी? और दामोदर को भी जैसे धक्का-सा लगा। वज्र से भी कठोर उसका हृदय न जाने राधा के नाम से ही कुसुम से भी कोमल बन द्रवित हो उठता! उसने जबरन अपना ध्यान राधा से हटाकर केशव की ओर किया। पर यह क्या? उस नन्हे वानर की याद आते ही उसकी आंखें धुंधला गईं और कानों में आवाज आई—"पिताजी!"

चौंककर उसने सिर उठाया—आंखें पोंछी—सचमुच सामने केशव खड़ा था। विचारों की धुन्ध में चलता-चलता वह मुलाकात के कमरे में पहुंच चुका था और सींखचों के पार उसे पुकारता हुआ केशव खड़ा था, साथ मां, पत्नी और वासुदेव थे। पिता से चलने को कहा गया, तो उन्होंने हाथ उठाकर वहीं से उसे आशीर्वचन कहला भेजा। इस आघात से वे तन-मन से ऐसे टूट चुके थे कि उनसे यह सफर करना असंभव था। रुक्मिणी उनकी देखभाल के लिए घर ही रही थी।

आखिरी मुलाकात और वह भी सींखचों के पार—शायद सबके मन में यही बार-बार आ रहा था। सब मूक ही रहते अगर केशव की आवाज फिर न गूंजती—"पिताजी!" दामोदर ने आगे बढ़ उसके नन्हे हाथ सींखचों के बीच से पकड़ लिए। उन हाथों को वक्ष से लगाए वह विह्वल हो उठा। तभी केशव बोला, "पिताजी! मुझे सब पता चल गया है। मां तो कुछ नहीं बताती—मां ही आई (दादी) कुछ कहती हैं—और बाबा तो बस आंखें बन्द किए लेटे रहते हैं—लेकिन मुझे चाचा जी से सब पता चल गया है।" उसकी बातें सुन एक आंख से हंसता और दूसरी आंख से रोता दामोदर पूछने लगा, "क्या पता चला है रे राम दूत! मुझे भी बता!"

उत्तर मे धीरे से फुसफुसा कर केशव बोला, "वही पिस्टल वाली बात। पिताजी ! आपने बहुत अच्छा किया।" बेटे के मुंह से ये शब्द सुन उस अन्धकार भरी घड़ी मे भी दामोदर अट्टहास कर उठा। मा, वासुदेव व राधा भी मुस्कराए बिना न रही। "वाह! मेरे बेटे ! तुमने जो तारीफ की, उसका तो मुकाबला नही—" केशव ने अपनी प्रशसा सुनी, तो फूलकर फिर बोला—"एक बात और सुनो पिताजी ! मैंने भी अपनी नई पिस्टल मगवा ली है और फिर मैं भी इन साले ललमुहों को यू···" कहते-कहते केशव ने हाथो से जो निशाना लगाया कि हसते-हसते दामोदर की आखों मे पानी आ गया।

"अरे लगूर ! यह सब तुझे किसने सिखाया है ?"

"आपने ही, पिताजी !" केशव का जवाब तैयार था। एक बार फिर सब हस दिए।

यह दृश्य आस-पास खडे सब जेल-अधिकारियो के लिए नया था। उन्होंने फासी के कैदी और उसके परिवार को कभी यू हसते-मिलते न देखा था। सब चकित-से सोच रहे थे जो मरने के वक्त भी इतने जिन्दा-दिल है, वे जिन्दगी मे सचमुच कैसी शान से जीते होगे।

अब तक दामोदर केशव के बहाने राधा से आखे चुराए था। वह नहीं जानता था कि राधा की आखो के प्रश्न का वह क्या उत्तर देगा ? पर अब उसका सामना उसे करना ही था। मा ने आगे बढ बेटे की पीठ पर हाथ रखा, "बेटा ! तू चिन्ता न करना तेरी अमानत मेरे आचल मे सुरक्षित है···" मा का सकेत समझ दामोदर की आखें भर आई। बोला, "मा ! अमानत तो सभालना पर पहले मेरी मा को भी सभाल लेना—" कहते-कहते दामोदर की व्याकुल आखें मा के कृश शरीर और निष्प्रभ मुख पर अटक गई। उसने देखा इन दिनो मे मा का स्वास्थ्य कितना क्षीण हुआ था। राधा भी पहली राधा की छाया-सी लग रही थी। आखें बता रही थी कि रास्ते भर वे बरसती रही थीं, ताकि उसके सामने एक भी आंसू न निकल सके। अधरो पर बरबस लाई मुस्कराहट पुकार-पुकारकर कह रही थी कि इन अधरो ने अब मुस्कराना छोड दिया है। माथे पर दमकती सिन्दूर की लाली उस तडपते हृदय के जलते

अरमानों की आग-समान लग रही थी।

ठंडी सांस खींच दामोदर मुस्कराकर बोला— मा ! अब समझ आया कि तुमने मेरा नाम कन्हैया और अपनी बहू का नाम राधा क्यों रखा था?"

"क्या समझ आया? भला, बता तो—" मा भी मुस्करा उठी। राधा व वासुदेव भी उत्सुक हुए।

"देखो मा? मैं हुआ कन्हैया और यह हुई राधा तो तुम हुई यशोदा मा! ठीक है न!" सिर हिलाते हुए मा ने 'हां' कही— अब कृष्ण का असली काम तो था-कंस-वध। वह कंस समझ लो—रैंड! बस, जब कंस का वध करने कन्हैया गए, तो फिर अपने घर, गांव, मा, राधा सब से ही तो विदा ले ली थी न···इसी तरह अब मैं विदा ले रहा हू—" कहकर दामोदर तो हंस पड़ा लेकिन न मा हंस सकी, न राधा!

ठंडी सांस भर मा बोली, "आह! इतना मरल नहीं विदा देना···"

तभी वासुदेव सामने आया और धीरे से बोला, "भैया! तुम्हारी सौगन्ध, मैं उस देशद्रोही से बदला लूगा—" सुनते ही दामोदर की आंखें चमक उठीं। उसने जोर से वासुदेव की हथेली दबाई, "लेकिन होशियारी से! याद रख, अब तू ही घर को सभालेगा—समझा!"

"समझता हूं भैया! लेकिन अब आप मुझे लड़की तो नहीं समझोगे न!"—उस बात की याद कर दामोदर फिर अट्टहास कर उठा।

अब मुलाकात का समय खत्म होने वाला था। निर्मम कानून दिलों को रौंदता कुचलता चलता है। अब तक राधा एक शब्द न बोली थी। बस मूक नयनों ने न जाने क्या कुछ कह डाला था। पर दोनों एक-दूसरे से कुछ कहने को आकुल थे। मा समझ गई कि लाज-संकोच उन्हें रोक रही है। वह केशव से बात करने के बहाने बेटे की ओर पीठ कर केशव को जेल दिखाने लगी। वासुदेव भी उधर देखने लगा। तब धीरे-से दामोदर ने पुकारा, "राधा!" बिजली-सी वह आगे बढ़ आई और कसकर उसके हाथ थाम लिए, "कहो!"

"मुझे कन्हैया कहकर पुकारो—बस, एक बार।"

कंठ तक आई रुलाई रोकते हुए बोली, "कन्हैया! मेरे जन्म

के कन्हैया ! राधा तुम्हारी है, सदा तुम्हारी !"

"मेरे पीछे रोओगी नहीं ?"

"नहीं !" बडी कठिनाई से वह बोल सकी ।

"तुम वीर पत्नी हो राधा ! मै तुम्हारे पास रहूगा···हर पल··· हमेशा, हमेशा !" और दो प्रेमी हृदयो ने विदा ली ।

फांसी से कुछ दिन पहले दामोदर ने लो० तिलक से मिलने की इच्छा प्रकट की परन्तु उसे आज्ञा न मिली । तब उसने अपना सदेश उन तक भिजवाया जिसमे दो आग्रह किए थे । एक यह कि उसे तिलक के हस्ताक्षर सहित 'गीता' की पुस्तक भेज दे, दूसरा यह कि फासी के पश्चात् उसका शरीर अग्रेजो के हाथ न लगे । यदि शव परिवार तक न पहुचा सके, तो किसी ब्राह्मण के हाथों अन्तिम सस्कार हो ।

लो० तिलक के पास दामोदर का जब यह सदेश पहुंचा तो एक बार उनका स्थिर चित्त भी अस्थिर हो उठा । न जाने क्यों उन्हे दामोदर मे विशेष लगाव था । ऐसे अमूल्य जीवन को यू नष्ट होते वे सहन न कर पा रहे थे । उन्होंने रैंड-वध की सारी योजना बडी कुशलता से बनाई थी इसके लिए कितना ही धन जुटाया था । फिर भी यह दुखान्त होने वाला था । इसका उन्हे गहरा आघात लगा ।

दामोदर के लिए 'गीता' पर हस्ताक्षर करते-करते उनके हाथ कापे और मुह से निकल पडा—"देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवन जरा···" अर्थात जिस प्रकार बचपन के बाद युवावस्था और उसके बाद बुढापा अवश्यम्भावी है, उसी प्रकार जीवन के बाद मृत्यु भी अवश्यम्भावी समझकर धीर पुरुष मोहग्रस्त या दुखित नही होते ।

दामोदर ने गुरुदेव का अन्तिम संदेश प्राप्त कर हृदयगम कर लिया । अधीर तो वह पहले भी न था । अब उसे अधिक बल अनुभव होने लगा । फासी का दिन आ पहुचा । उस दिन दामोदर हमेशा से कुछ अधिक उत्साह मे था । उसकी कोठरी के पहरेदार सिपाही उसे दयार्द्र आखो से देख रहे थे । पर वह था कि मस्ती मे गा रहा था—

तेरा वैभव अमर रहे मा
हम दिन चार रहें न रहें…

सुननेवाले चौंक उठे। उन्हें सचमुच यह युवक विलक्षण लगा। उसी विलक्षण आनन्द में डूबा वह हाथ में गीता और अधरों पर गुरु-मन्त्र—

"देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा
तथा देहान्तरप्राप्तिः धीरस्तत्र न मुह्यति"

गुनगुनाते हुए फांसी के तख्ते पर जा चढ़ा और अगले ही पल उसके मुक्त प्राण शरीर का बन्धन तोड़ स्वतन्त्राकाश में विलीन हो गए!

उसी पल…उसी दिन चाफेकर भवन में सारा परिवार पूजा-गृह में नतमस्तक बैठा था। आंखें बन्द थीं जिनमें अविरल अश्रुधार बह रही थी। अधरों पर सबके चुप्पी थी। किन्तु हृदय बोल रहे थे—"प्रभु! शक्ति दे…धैर्य दे…शान्ति दे!"

राधा भी मौन, मूर्तिवत् बैठी थी। हृदय में तूफान उठ रहा था—"मैं क्यों जीवित हूं? मेरे सर्वस्व ही चले गए…फिर भला मैं किसके लिए जिऊं?" किन्तु दूसरे ही पल अपना वचन याद आ जाता और दामोदर के शब्द कानों में गूंज उठते—"तुम वीर पत्नी हो न! मेरे पीछे रोना नहीं…" और वह झटका देकर अपने को संभालती, सोचती—"उनको दिया वचन झूठा नहीं करूंगी…पहले उनके लिए जीवित थी, अब अपने कर्तव्य के लिए जिऊंगी—" दामोदर का शव भी उन्हें न दिया गया था किन्तु उन्हें यह आश्वासन था कि लोकमान्य के प्रयत्नों से उसका अन्तिम संस्कार उनके भानजे के हाथों करवा दिया गया था।

रात अंधेरी थी। ऐसा घटाटोप छाया था कि हाथ को हाथ सुझाई न दे रहा था। घनघोर वन में झींगुरों की झंकार और सन्नाटे को साय-साय दिल दहला देने वाली थी। जब सब वन्य पशु-पक्षी भी अपने-अपने बसेरों में दुबके पड़े थे, तब एक छाया-सी उस सन्नाटे

धीमी आहट से बचाती आगे बढ़ी जा रही थी। वह एक पुरुष था—मैले-फटे कपड़े पहने दाढ़ी बढ़ाए, नंगे पांव चला जा रहा था। पांव उठाते समय वह ऐसे सावधानी रखता, जैसे सन्नाटे को भी आहट न देना चाहता था। रात अन्धेरी तो थी ही पर काले बादलों ने इसे भयावनी भी बना दिया था। तेज हवा में लहराती कुछ बूंदें उसपर गिरीं, तो वह एकबारगी सिहर उठा। तेज वर्षा के आसार देख वह असहाय-सा इधर-उधर देखने लगा। शायद सोच रहा हो कि सिर कहां छिपाऊंगा।

उसने अपनी चाल और भी तेज कर दी। अब वह पेड़ों के झुरमुट से निकल चुका था। सम्भवतः अब वह जंगल से बाहर की ओर आ पहुंचा था। दूर टिमटिमाती रोशनी ने उसके पांव में बिजली-सी भर दी। उसे आशा हुई कि उसे अब रात को भटकना नहीं पड़ेगा। तेजी से कदम बढ़ाता वह उस रोशनी के पास पहुंचने वाला था। जब वह वहां पहुंचा, तो उसने देखा कि वह एक छोटी-सी चाय की दुकान थी। चाय और कुछ खाने-पीने की कल्पना से उसकी आंखों में चमक आ गई। स्पष्ट था कि कई दिनों से उसने फाका ही किया था। किन्तु दुकान के भीतर से अनेक आवाजें सुनकर वह ठिठक गया। दुकान के पिछवाड़े खड़ा सोचता रहा कि भीतर जाए या न। अभी वह असमंजस में ही था कि किसीकी बात सुन उसके कान खड़े हो गए।

उसने सुना—"अरे भाई, आज की बड़ी खबर सुनी तुमने?"

"क्या?" दूसरी आवाज उभरी।

"बहुत बुरी खबर है कि पूना के दामोदर चाफेकर को बम्बई में फांसी दे दी गई···"

"हैं!" और अन्यों के साथ बाहर खड़ी वह छाया भी कांप उठी।

"ओह! भैया गए बलि पथ पर···" कहने वाला था—बालकृष्ण चाफेकर! चाय और खाने की मानो इच्छा ही मर गई। उसे अपना सिर घूमता-सा लगा। हाथों से माथा थामे हुए वह पिछले पैरों जंगल की ओर लौट पड़ा।

'तो'''दामोदर भैया ने बलिदान दे दिया ! अब रहा मैं ? मैं कब तक यूं मुंह छुपाए जंगलों मे भटकता रहूंगा ?' बालकृष्ण के मन में विचारों का द्वन्द्व-सा चल रहा था। उसकी आंखों मे रह-रहकर दामोदर की वह आखिरी भेंट याद आ रही थी—जब वह चौंककर बोल पडा था "अरे तुम !" और इधर उसे हथकड़ियों ने दबोचा, उधर बालकृष्ण छलांग लगाकर पीछे कूदा। तब जो भागना शुरू किया उसने, तो आज तक वह भागता ही रहा था। ब्रिटिश सिपाही शिकारी कुत्तों की तरह जगह-जगह उसके पीछे लगे रहे। पर चूंकि वे उसे पहचानते न थे इसलिए वह उनसे बचता-बचता पूना से निकल, महाराष्ट्र की सीमा पार कर हैदराबाद मे आ पहुंचा था।

किन्तु यहां भी उसे चैन न था। पुलिस अब पहले से अधिक सतर्क थी। दामोदर के भाई को पकड़ने में अब वह ढील न देना चाहती थी। इसलिए वह बस्ती से दूर ही रहता। उस दिन के बाद न तो कभी वह पेट भर खा सका, ना ही सो सका। पशुओं की तरह जंगल में इधर-उधर कुछ खा-पीकर वह दिन काट रहा था। कितनी ही बार उसका स्वाभिमान कचोटता—'ऐसे मुंह छुपाकर जीने का क्या अर्थ ?' तब उसका पौरुष कसमसा उठता और वह बाहर निकल कुछ करने को आतुर हो जाता। किन्तु तभी गुरुदेव के शब्द चन्दन-लेप की तरह शांति वर्षा कर जाते—"याद रखना, जीवन यूं ही गंवा देने को नहीं मिला है। इसे देश की अमूल्य धरोहर समझना। अंग्रेजों की जेल में सड़ने की अपेक्षा जंगल में भटकना अच्छा !"

बस, यही शब्द उसे रोक लेते। इसी उलझन में दिन बीत रहे थे। किन्तु जबसे उसने दामोदर की फांसी की खबर सुनी थी, तब से वह अत्यधिक अशांत रहने लगा था। सोते-जागते उसके सामने भैया का दमकता हुआ चेहरा आ जाता। कई बार उसे लगता मानो कानों में कोई बोल रहा हो—"जय बजरंग बली की।" और अनायास उसकी आंखों से आंसू ढुलक पड़ते। कभी विचार घर की ओर भटक जाते और कल्पना-नेत्रों से वह देखता कि घर में सब बुझे-बुझे से हैं''' मुस्कान-रहित'''कठोर कर्तव्य में बंधे—किन्तु आकुल-व्याकुल।

एक दिन इन्हीं ख्यालों में डूबा वह अनमना-सा पेड़ के नीचे लेटा था। सहसा पास ही कुछ आहट हुई। चौंककर अपनी जेब में पिस्तौल निकाल ली और उठ खड़ा हुआ···तभी··· "पिस्तौल की जरूरत नहीं, बालकृष्ण ! मैं तुम्हारा मित्र हूं—गुरुदेव का भेजा हुआ।" आगन्तुक के इन शब्दों ने जादू का असर किया।

बालकृष्ण रुक गया—आश्चर्य व आशंका से देखा—आगन्तुक एक सामान्य किशोर लग रहा था। उसने आगे बढ़ कहा—"विश्वास नहीं आता, तो लो यह प्रमाण।" अपनी जेब से एक पत्र देकर दूर खड़ा हो गया।

एक हाथ से पिस्तौल निशाना बांधे हुए बालकृष्ण ने दूसरे हाथ में पत्र लिया। लिखाई देखते ही चौंक उठा। गुरुदेव ने हैदराबाद के मुख्य न्यायाधीश श्री केशवराव कोर्ट के नाम पत्र लिखा था जिसमें आग्रह किया था कि बालकृष्ण चाफेकर की जीवन-रक्षा के लिए उसके खाने-पीने, रहने की वे कुछ व्यवस्था कर दें।

अब बालकृष्ण ने फिर से आगन्तुक की ओर देखा—शायद परख रहा था कि कहीं कोई धोखा ही तो नहीं। उसका सन्देह भांपकर आगन्तुक मुस्कराया, "भैया ! मैं तो जानता था कि आप सहज में विश्वास नहीं करेंगे। मैं भी तो वही विचार रखता हूं जो किसी भी क्रान्तिकारी के हृदय में होते हैं। इसीलिए तो प्रमाण रूप में आग्रह कर यह पत्र साथ लेता आया। अब तो विश्वास है न ?"

प्रत्युत्तर में बालकृष्ण भी मुस्कराया, "हां, मित्र ! अब विश्वास आया। यदि तुमने गुरुदेव का पत्र लाने की सूझ न बरती होती, तो मुझे अब स्वयं भगवान भी विश्वास दिला सकने में समर्थ नहीं होते। विश्वासघात का ऐसा कटु अनुभव हुआ है कि अब किसी पर भी विश्वास नहीं रहा है।"

बालकृष्ण के शब्दों में भरी वेदना ने आगन्तुक के मर्म को छू लिया। वह पूछे बिना न रह सका, "कैसा विश्वासघात ? किसने किया ?"

उत्तर में ठंडी सांस लेकर बालकृष्ण बोला, "अपने ही एक मित्र के विश्वास ने मुझे यूं छला कि मैं अपने भाई दामोदर को गवा

बैठा।" कहते-कहते वह रो पड़ा। पश्चाताप से उसका गला भर आया। बार-बार उसे यही पछतावा लग रहा था कि अगर उसने द्रविड पर विश्वास कर उसे गुप्त स्थान तक न आने दिया होता, तो शायद दामोदर फांसी से बच जाता।

पूरी बात सुनने के बाद आगन्तुक युवक जिसका नाम—किशोर था—उत्तेजित स्वर मे बोला, "इसी विश्वासघात ने तो हमारे दुश्मनों के हाथ मजबूत किए है वरन इन मुट्ठी भर विदेशियों की क्या हिम्मत थी कि वे हिन्दुस्तान पर शासन करते।"

अब किशोर उसे अपने साथ एक सुरक्षित स्थान की ओर ले चला। रास्ते में उसने बताया कि लो० तिलक का श्री कोटंकर से स्नेह सम्बन्ध ही था वरन् विचारों में दोनो का कोई मेल न था। कोटंकर की विचारधारा तिलक के क्रांतिकारी विचारों से मेल न खाती थी। वह गोखले का अनुयायी था। परन्तु लो० तिलक की स्वदेश-भक्ति और विद्वता की ऐसी धाक थी कि वह उनका विश्वासपात्र बन इस गोपनीय सहायता के लिए तैयार हो गया था। पूरी बात सुन बालकृष्ण ने मन ही मन गुरुदेव तिलक को अभिवादन किया। उसे लगा—वह सचमुच अनाथ या असहाय नहीं। गुरुदेव का वरद् हस्त सदा उसपर है।

बालकृष्ण को बस्ती से दूर एक गुप्त स्थान पर रखा गया। वहां पर उसे भोजन, दवाई आदि सब आवश्यक वस्तुएं पहुंचा दी जाती। उसके कष्ट के दिन अब खत्म थे। जीवन अब जीने योग्य बन गया था।

इस प्रकार काफी दिन बीत गए। फिर भी बालकृष्ण इस जीवन का अभ्यस्त न हो सका। प्रतिदिन उसका मन वहां से भाग जाने को अधीर हो उठता। दिन तो वहा पढ़ते-लिखते काट देता पर रात के सन्नाटे व अन्धेरे मे वह पूरी रात जागते-जागते ही काट देता। उसे लगता—मानों पूना नगरी बाहे फैलाकर उसे बुला रही है। कभी रुक्मिणी की हिरनी-सी आतुर आंखें उसे पुकारती—कभी माधव की तोतली आवाज। कभी मा का तेजस्वी चेहरा उसे अपने पास खीचता तो कभी अपनी जन्मभूमि पूना की ममता उसे बांधने लगती।

इसी मानसिक संघर्ष में दिन-रात उलझते-उलझते आखिर एक दिन वह थक गया। तब अचानक ही उसने फैसला कर लिया—"बस, अब और नहीं! मैं पूना जाऊंगा—वहां अज्ञातवास कर लूंगा—लेकिन पूना की धरती पर ही रहूंगा।"

इस दृढ़ निश्चय के साथ उसने एक रात वह गुप्त निवास त्याग दिया। वेशभूषा व शक्ल-सूरत से अब वह पुराना बालकृष्ण तो रहा ही न था। अतः पकड़े जाने की उसे आशंका न थी। फिर भी वह काफी सावधान रहता। इसी प्रकार मार्ग तय करते-करते वह हैदराबाद की सीमा पार कर नागपुर के रास्ते महाराष्ट्र में प्रवेश कर गया।

अपने प्रदेश में पहुंचते ही बालकृष्ण ने इतना उल्लास अनुभव किया मानो वह अपनी मां की ही गोद में पहुंच गया हो। ऐसा उल्लास एक बार बहुत पहले अनुभव हुआ था जब वह बम्बई से पूना लौटा था। किन्तु तब वह अकेला न था। "आह! भैया के बिना संसार ही सूना है—" दामोदर के अभाव ने फिर उसकी आंखों को धुंधला कर दिया।

सांझ के झुटपुटे में तेज़ी से कदम बढ़ाता वह अपने घर की ओर बढ़ा जा रहा था। किसी गुप्त स्थान पर छुपने से पहले वह एक बार अपने सन्तप्त परिवार से मिलना चाहता था। विशेषतः राधा भाभी को सान्त्वना देना चाहता था।

उदास-सी सांझ चाफेकर-निवास पर उतर आई थी। ऐसी करुण नीरवता छाई थी कि पक्षी भी सहमकर कलरव भूल बैठे थे। संभवतः वे भी उन दिनों की मूक साक्षी दे रहे थे जब भीतर के उल्लास के स्वर बाहर के कलरव से होड़ लिया करते थे। छाया-सी दो रमणियां भीतर से बाहर आंगन में आईं। पहले राधा ने तुलसी मैया पर दीया जलाकर प्रणाम किया, फिर रुक्मिणी ने। दोनों के आंचल पकड़े हुए केशव व माधव भी खड़े थे। जब बड़ी देर तक दोनों हाथ जोड़ आंखें बन्द कर खड़ी रहीं, तो माधव से न रहा गया। आंचल खींचता हुआ

बोला, "मां, बस करो न ! अन्दर चलो···बड़ा अन्धेरा है···"

रुक्मिणी आंखें बन्द किए खड़ी रही—आंखों से अविरल अश्रुधार बह रही थी। उसे देखते हुए केशव ने समझदार की तरह माधव को धीरे-से डांटा, "अरे, क्या करता है ? देखता नहीं चाची प्रार्थना कर रही हैं···"

तभी द्वार पर कुछ आहट हुई और उधर देखते ही माधव चिल्लाया, "मा···बाबा···!" केशव ने भी उधर देखा और कांप उठा—चौंककर दोनों बहुओं ने आंखें खोलीं—देखा एक अपरिचित व्यक्ति, मलिन वस्त्र पहने आगे बढ़ा आ रहा था—घबराहट में शायद वो चीख पड़तीं तभी आगंतुक ने मुह पर अंगुली रखी—"शश् शश्··· रुक्मिणी ! यह मैं हू।"

आवाज पहचानी-सी लगी। रुक्मिणी तो शायद देर ही लगाती पर राधा ने पल भर में बालकृष्ण को पहचान लिया। हर्ष व आश्चर्य से दोनों ठगी-सी रह गईं।

बालकृष्ण ने उन्हें वहीं छोड़ा और तेजी से पूजाघर की ओर बढ़ा। आनन्दावेग से कांपते हुए वह मा व पिता जी के पांव में गिर पड़ा···पहले तो वे भी चौंक उठे। पर जब बालकृष्ण की आवाज सुनी, तो ऐसे हृदय से लगा लिया जैसे गाय जंगल से लौटकर बछड़े से लिपट जाती है।

"आज हमारी पूजा-अर्चा सफल हुई रे···पुत्र ! प्रभु का कोटि धन्यवाद, जो मेरा बिछुड़ा लाल मिला दिया, पर आह ! मेरी एक आंख हंसती तो दूसरी रोती है मेरा एक लाल मिला—पर दूसरा बिछुड़ गया···" मा की मुस्कान इतनी करुण थी कि आंसू भी लजा जाएं। किन्तु वह वेदना क्षणिक थी। अद्भुत धैर्य से स्वयं को संयत कर मा फिर बोलीं, "बेटा ! हम तो तुमसे भेंट की आशा छोड़ चुके थे··· बता, इतने दिन कहां रहा ? बहुत कष्ट झेले न ?" पूछते हुए मा व पिता की आंखें उसके मलिन वेश व मुरझाए चेहरे पर गड़ गईं।

बालकृष्ण गले मे रुंधे स्वर में बोला, "अब मुझे कोई कष्ट नहीं मा ! एक बार अपनी आंखों सबको देखना चाहता था। सबको देख लिया !

"'''लेकिन भैया दामोदर को कहा देखू मा'''?" कहते-कहते वह फूट-फूटकर रो पडा। उसके संग मा, पिता व दोनों बहुएं भी सिसक उठीं। इतने दिनो से संयमित दु:ख का प्रवाह बांध तोड़ बह चला।

उसी क्षण वासुदेव बाहर से आ गया। बालकृष्ण को देख पहले तो वह सकपकाया—पर उसे पहचानते ही लपककर गले से लग गया। उस अश्रु-गंगा मे उस क्षण मनुज तो क्या निष्प्राण दीवारें भी सराबोर हो रही थीं'''बहुत देर बीत गई—तो मा ने सबको धैर्य बधाया। बोली, "बेटा! रोती तो आखें है क्योकि इन्हे अपना प्रियजन दिखाई नही दे रहा। पर हृदय और आत्मा तो सन्तुष्ट है—प्रसन्न है। मेरा बेटा अब प्रत्यक्ष नही दीखता तो क्या—अब वह हमारे मन-मन्दिर मे समा गया है'''वह हमसे बिछुडा नही, वह तो हमारे अणु-अणु मे बस गया है। उसका बलिदान हमें अटूट बल और गौरव से भर गया है'''!" मा की तेजस्वी आकृति देख बालकृष्ण गद्गद् हो उठा—"मा! तुम्हारी यह तेजस्विता ही तो हमें निर्भय हो आगे बढाती हैं''' लेकिन भाभी?" और उसकी आखें राधा की ओर उठीं।

राधा पहले से बहुत क्षीण हो चुकी थी। किन्तु चेहरे पर अद्भुत तेज था—मानो वेदना पर धैर्य ने विजय पा ली हो। जो नयन पहले कमल पुष्प से खिले रहते थे, अब वे ठहरी झील की तरह शान्त, गभीर हो गए थे। भाभी की यह दशा देख बालकृष्ण का हृदय चीत्कार कर उठा।

उसी क्षण उसका ध्यान द्रविड़-भाइयो की ओर गया—और उसके दात भिच गए—मुट्ठिया कस गईं। यह भाव-परिवर्तन वासुदेव से छुपा न रहा। वह समझ गया कि भाई का क्रोध किसपर है'''धीरे से हाथ दबाकर उसने कहा, "भैया! मैंने बडे भैया को वचन दिया है—तुम्हे भी देता हू—उस देशद्रोही को भरपूर दण्ड देकर रहूगा। तुम विश्वास रखो।"

उत्तर मे बालकृष्ण ने कृतज्ञ स्नेहभरी दृष्टि से छोटे भाई को देखा।

वह रात सबके लिए मधुर नींद लेकर आई। दामोदर के जाने के

बाद आज रात सबने कुछ घड़ियां आनन्द में मनाई। राधा भी अपना दुःख भूल अपनी छोटी बहन के सुख में विभोर थी। और रुक्मिणी···वह तो आज एक ही रात में मानो पूरा जीवन जी लेना चाहती थी।

'आज के बाद न जाने कब मिलें···या न मिलें?'—यही बात बार-बार दोनों के हृदयों में कसक रही थी। दोनों मौन बैठे बस एक-दूसरे को अपलक निहार रहे थे, "रुक्मिणी!" आखिर बालकृष्ण ने नीरवता भंग की।

"हूं···"

"क्या चुप ही रहोगी? कुछ कहोगी नहीं?"

"कितना कुछ कहने को है—सुनने को है। पर अब न जाने क्यों यही जी चाह रहा है कि तुम्हें देखती रहूं···बस देखती रहूं···"

बालकृष्ण हंस पड़ा, "तो तुम जान गई हो कि आज के बाद शायद फिर देख न पाओगी···"

इतना सुनना था कि उसने अकुलाकर उसके होंठों पर उंगली रख दी, "ऐसा न कहो—मेरी सौगन्ध!"

वह फिर मुस्कराया, "नहीं रुक्मिणी! इतना छोटा दिल नहीं रखते। कल की पीड़ा को आज ही समझ लें, तो कल तक वह असह्य नहीं रहेगी।"

उत्तर में रुक्मिणी कुछ न कह सकी। पर आंखों से ढुलकते आंसुओं ने मन की बात कह दी।

उन सुन्दर आंखों को पोंछते हुए बालकृष्ण बोला, "रुक्मिणी! जब भी उदासी आए, तब यह दुहरा लिया करना—'मैं वीरवधू हूं'। वधू केवल पति को समर्पित होती है लेकिन वीरवधू पति के साथ-साथ अपने देश को भी समर्पित होती है। तुम्हारा जीवन पुष्प समान केवल अपने लिए नहीं खिला—वह तो सुगन्ध समान सबके लिए सुगन्ध बिखेरने को है···"

रुक्मिणी ने आंचल से आंखें सुखा लीं और मधुर मुस्कान ओढ़कर कहा, "आपकी इच्छा शिरोधार्य···उसकी इस भावभंगिमा पर मुग्ध हो बालकृष्ण ने आह्लाद से भर उसे बांहों में भर लिया। और फिर वह

रात मादक हिंडोल सरीखी मस्ती में भूलती बीत चली।

दूसरे दिन पौ फटने से पहले ही बालकृष्ण ने सबसे विदा ली। दोनों बच्चे सो रहे थे। माधव के कपोल चूमते हुए बालकृष्ण ने रुक्मिणी की ओर अर्थ-भरी दृष्टि से देखा—मानो कह रहा हो—'अपना नन्हा रूप तुम्हारे पास छोडकर जा रहा हूं···तुम अकेली नहीं हो—'

जाने से पहले बालकृष्ण ने भाभी के चरण स्पर्श किए। भरे गले से बोला, "भाभी ! आपकी सहनशक्ति व धैर्य अपूर्व है···अब मुझे विश्वास हो गया है कि भैया की महान आत्मा आप ही मे जीवन्त है···मा और आप इतनी तेजस्विनी हैं कि हम साक्षात् यमराज के सामने भी जाने से नहीं डरेंगे···"

उसकी बात से आशंकित राधा कह बैठी, "भैया ! अब तुम ऐसा वैसा न सोचो···ईश्वर करे तुम शीघ्र घर लौट आओ···"

"घर !" बालकृष्ण हस पड़ा। फिर मा व पिता जी के पाव छुए—वासुदेव से गले मिला। जाते-जाते आखिरी बार जब उसने सबकी ओर आकुलता से देखा तो सबके हृदयों मे एक ही भाव आया—शायद यह भेंट आखिरी हो !

बालकृष्ण के पाव रास्ता तय कर रहे थे पर मन उन परिचित गली-कूचों मे अटक-अटक जा रहा था। उसे मालूम न था कि उसे किधर जाना है पर चलते-चलते स्वयमेव ही उसके पाव उसे उस सुपरिचित जगह ले आए, जिसे देख उसका वज्र-हृदय भी द्रवित हो आसों मे बह निकला। वह 'चाफेकर क्लब' के सामने खड़ा था। सूनी-सूनी आखो से उस उजड़े हुए स्थान को देख रहा था, जो कभी मित्रों के कहकहों और गीतों से गूजता रहता था। अब न वहा 'चाफेकर क्लब' का नाम-पट था—ना ही कमरे में वे चित्र—वह सामान !

वह धीरे-से बुदबुदाया—"जब क्लब की आत्मा 'दामोदर' ही न रहा, तो यह खाली क्लब किसके लिए जीता ? आह ! भैया तुम क्या गए, सब कुछ ले गए···बस, मुझे छोड़ गए अकेले इन उजाड स्मृतियों में भटकने को···" अब उससे सहन न हुआ। असीम वेदना से उसकी रुलाई फूट पड़ी।

पकड पास बिठा लिया और बोली, "बेटा ! तू कैसा भाई है रे ! आज तुम्हारे अग्रज बलिदान-पथ पर बढ रहे है, तो तू दिल छोटा कर रहा है···"

किन्तु वासुदेव कुछ न बोला—उसके होठ फड़ककर रह गए। आखे ऐसी लाल हो रही थी जैसे उनसे आग निकल रही हो। उनकी उग्र आकृति देख मा कुछ सकपकाई। फिर कोमल शब्दो मे बोली, "क्या बात है बेटा ! बताता क्यो नही ? मैं क्या बिना बताए नही जानती कि बालकृष्ण को भी फासी हुई होगी···" अन्तिम शब्दो मे मा का दृढ स्वर भी काप उठा।

"नही मा ! केवल यही बात होती तो मैं न घबराता। पर बात ऐसी बनाई गई है कि कहते हुए मेरा कलेजा फटता है···" उत्तेजित वासुदेव उठ खडा हुआ। दोनो हाथ सीने पर बंधे थे···चेहरे से प्रकट था कि उसके हृदय मे असह्य पीडा अनुभव हो रही थी···

"अरे पगले ! फासी से भी बढकर क्या दण्ड दे सकती है सरकार ···" मा का चेहरा अब भी सहज था।

"नही मां ! फासी से भी बढकर एक सजा है और वह है—द्रोह ···सगे भाई से द्रोह ! आह ! यह मैं नही कर सकता···नही···कभी नही···" वासुदेव उन्माद ग्रस्त की तरह सिर पटकने लगा।

अब मा चौक उठी। उसे दोनो हाथो से थाम कर अधीरता से बोली, "क्या कह रहा है तू ? भाई से द्रोह ? कौन कर रहा है भाई से द्रोह ?"

"मैं मा ! वह अभागा भाई मैं ही हू—" वासुदेव की आखो से अब आसू ढुलकने लगे।

"मुझे कुछ समझ नही आ रहा···तू क्यो भाई से द्रोह करेगा भला ? समझाकर कह न !"

अब वासुदेव ने पूरी बात कह सुनाई कि बालकृष्ण को कातिल सिद्ध करने के लिए वासुदेव को गवाह रूप मे पेश किया जाएगा। पूरी बात सुनकर मां सन्नाटे मे आ गई। तब तक राधा व रुक्मिणी भी वहा आ गई थी। वृद्ध पिता दूसरे कमरे मे थे। अब सब समझे

कि वासुदेव की असह्य वेदना का कारण क्या था !

वासुदेव फिर फफक पड़ा, "अपने भैया को मृत्युदंड दिलाने की गवाही देने में मैं गोली से आत्महत्या करना अच्छा समझता हूं। मैं मर जाऊंगा—पर गवाही नहीं दूंगा।"

सब किंकर्तव्यविमूढ़-से चुप थे। भाग्य उन्हें ऐसी असह्य चोट देगा—इतनी कल्पना उन्हें न थी। अभी तो दामोदर के अभाव के घाव ताजे थे··· अभी तो राधा की सूनी मांग देख-देख सबका कलेजा फटता था। अब रुक्मिणी भी सूना माथा लिए लुटी-लुटी-सी रहा करेगी···इतना ही नहीं तो अब क्रूर विधाता तीसरे लाल को भी बलि-कुण्ड की ओर खींच रहा था !

"ओह !" होंठ कसकर आंखें बन्द कर लीं मां ने। दोनों बहुएं तो रोती-रोती उठकर चली गईं। रह गई अकेली मां ! बहुत देर बैठी रही वह ! अशक्त शरीर में अपूर्व बल-संचय करती रही। मन ही मन कहती रही—"भारत मां ! जन्मदायिनी हो तुम ! अब मृत्युदायिनी भी तुम्हीं बनी हो ! क्या तुम्हारे बली-कुण्ड में मेरा एक ही लाल पर्याप्त न था ? अब दूसरा भी हंसकर दे दिया···तो तीसरा लाल भी मांग रही हो ? आह ! मेरा आंचल रिक्त ही कर दोगी—मां !" दबी सिसकी सुन वासुदेव मां की तरफ मुड़ा। देखा—मां का मुख अश्रु-स्नात था ! आंखें बन्द थीं—होंठ भिंचे थे। पर उस हृदय की पीड़ा वह अनुभव कर रहा था जिसका भरा आंचल आज स्वेच्छा से खाली हुआ जा रहा था···

"मां ! मुझे बताओ मां ! मैं क्या करूं ? मुझे कुछ नहीं सूझ रहा ···मुझे रास्ता दिखाओ मां !" वासुदेव की करुणा-विगलित पुकार ने मां की तन्द्रा भंग की। अपनी पीड़ा भूल वह पुत्र का कष्ट हरने को आतुर हो उठी। बोली, "बेटा ! घबरा मत—हिम्मत कर ! रास्ता बिल्कुल साफ है···जिस पथ पर दोनों अग्रज गए—वही पथ तेरा भी है···" कहते-कहते अपनी बात का अर्थ समझकर मां का सर्वांग कांप उठा।

अनुमति पाते ही वासुदेव की सब निराशा दूर हो गई। हर्ष-नाद

हो बोला, "तो तुम्हारी आज्ञा है न मा ?"

दोनो हाथो मे बेटे का मस्तक थाम उसे चूमते हुए मा का दृढ स्वर गूज उठा, "यशस्वी बनो, बेटा ! बलि-पथ पर तुम्हारे पाव कभी न डगमगाए !"

अब वासुदेव तीर की तरह घर से निकल पड़ा। उसके पाव मे जैसे पख लग गए। कदम रास्ता तय कर रहे थे और मन भावी योजनाओ मे व्यस्त था। वह सीधा वहा पहुचा, जहा मित्र मिला करते थे। जबसे 'चाफेकर क्लब' पर छापा पड़ा था, सब मित्र किसी न किसीके घर मिला करते थे।

वासुदेव ने कमरे में प्रवेश करते ही 'जय महावीर' का नारा लगाया, तो साठे और रानाडे चौककर उसकी ओर देखने लगे। 'जय महावीर' का घोष दामोदर के जाने के बाद आज पहली बार वासुदेव के मुह से सुनाई पडा था।

"क्या बात है ? आज बडे खुश नजर आ रहे हो ?" रानाडे का प्रश्न आश्चर्यपूर्ण था। क्योकि जबसे बालकृष्ण का मुकदमा चला था, वासुदेव का दुख दुगुना हो गया था। भाई के जाने का दुख तो था ही, साथ-साथ अपनी गवाही का भी काटा खटकते रहता था।

"मित्रो ! आज सच मैं बहुत खुश हू। तुम्हे भी इसका भागीदार बना लूगा बशर्ते तुम मेरा साथ देने का वचन दो—" बोलते हुए उत्साह मे उसका चेहरा दमक रहा था।

साठे समझा—बालकृष्ण को छुड़ाने की कोई योजना होगी। बोला, "अवश्य साथ देंगे—वचन दिया।"

"बस, अब मैदान मार लिया !" उमग से भर उठा वासुदेव।

"लेकिन, बात तो बताओ—यू ही उछल-कूद मचा रहे हो—" रानाडे उतावला होकर बोल पड़ा।

वासुदेव ने दरवाजे, खिड़की सब बन्द कर दिए और धीरे से बोला, "अब उन दोनों देशद्रोहियो का काम तमाम करना है !"

"अरे !" दोनों मित्र यू चौक उठे मानो साप पर पाव पड़ गया हो। कुछ देर की चुप्पी के बाद रानाडे बोला, "लेकिन इसका परिणाम

भी सोचा है तूने ?"

उत्तर में भैया-सा गंभीर बन वासुदेव बोल पड़ा, "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्…फांसी ही मिलेगी न ! वही तो मुझे चाहिए ! दोनों बड़े भैया जब जन्मभूमि के काम आए, तब मैं भी क्यों पीछे रहूं…?"

वासुदेव बोल रहा था और दोनों मित्र विस्मित-से उसे देख रहे थे —सोच रहे थे—"धन्य है चाफेकर भाई—उसमें भी अभिनन्दनीय है इनका बलिदान !"

किन्तु मित्र का हृदय आशंका कर उठा, "लेकिन वासुदेव ! अभी तो तुम केवल 18-19 वर्ष के हो और मां के एक ही पुत्र…"

"क्या मां से अनुमति ले ली ?"

साठे के प्रश्न को उड़ाता हुआ वासुदेव बोला, "वाह मित्र ! मां की तो अनुमति मांगनी ही नहीं पड़ी ! मेरी मां तो साक्षात् जगज्जननी है । उन्होंने बिना कहे ही समझ लिया और आशीष दे दिया—'यशस्वी बनो' ?" मां की बात कहते हुए वासुदेव का स्वर स्वाभिमान से भर उठा ।

रानाडे व साठे ने मन ही मन अभिवादन कर कहा, "सचमुच, तुम्हारी मां जगज्जननी ही हैं । वरन् किसका इतना बड़ा दिल होगा जो तीनों पुत्र सहर्ष बलि-यज्ञ में दान दे दें ।"

तीनों ने योजना बना ली । वासुदेव और रानाडे अपनी पिस्तौलों से निशाना बांधना था और साठे ने रास्ते का पहरा देना था । तीनों ने पंजाबी नौकरों का वेश बनाया और चल पड़े ।

गणेशशंकर द्रविड़, अपने छोटे भाई और अन्य मित्रों के साथ ताश के खेल में मस्त था । उन्हें अब तक मि० ब्रून से इनाम के बीस हजार में से दस हजार रुपया मिल चुका था । बेशक, इनाम का आधा रुपया न मिलने और सरकारी नौकरी में न लगने से वह मि० ब्रून से काफी असन्तुष्ट था । किन्तु आज ही उसे एक ऐसा सरकारी पत्र मिला था, जिसने आशा लता में फिर पानी सींच दिया था । मि० ब्रून बड़े चतुर अफसर थे । उन्होंने द्रविड़ की नाराजगी भांप ली थी ।

अत: आज की डाक से एक पत्र आया कि द्रविड़ को सरकारी नौकरी भी मिलेगी और शेष दस हजार रु० भी। इसके साथ-साथ 260 रु० का मनीआर्डर भी आज ही मिला। ये रुपये उनसे आयकर के रूप में काट लिए गए थे। अब वे लौटा दिए थे। इसी कारण अब द्रविड़ भाई मित्रों के साथ ताश खेलकर आनन्द मना रहे थे।

"द्रविड जी! द्रविड जी!" कमरे की खिड़की से आवाज आई।

खेल रोककर द्रविड ने खिडकी से झांका—देखा दो पजाबी छोकरे खडे थे। "क्या बात है?"

"आपको जनाब ब्रून साहब ने दफ्तर मे बुलाया है।"—उत्तर आया।

"मि० ब्रून ने? इस वक्त?" द्रविड चौक उठा।

तभी दूसरा छोकरा बोला—"उन्होने कहा है कि बहुत जरूरी काम है—अभी-अभी ऊपर से कोई सरकारी पत्र आया है। इसलिए आपको फौरन आने को कहा है।"

'ऊपर से सरकारी पत्र आया है—' सुनते ही गणेशशंकर की लार टपक पड़ी। सोचा—जरूर शेष इनाम की रकम होगी। अब वह कैसे रुकता। ताश के पत्ते फेककर बोला—"मित्रो! आप खेलो, मै अभी आया···हां, आती बार मिठाई भी लाऊंगा···" और छोटे भाई के साथ वह छलांगें भरता बाहर निकल आया। आगन मे मा खड़ी मिली, आशक्ति-सी बोली, "इस वक्त क्यों जाता है थाने?"

उत्तर मे हस पड़ा द्रविड, "अरे मा! हमे थाने से क्या डर—चाहे रात हो या प्रभात?"

उसका कहना सच था। जबसे वे सरकारी मुखबिर बने थे, उन्हे सरकारी सुरक्षा प्राप्त हो गई थी। बेशक सब देशभक्त लोगो ने उनका सामाजिक बहिष्कार ही कर दिया था। राह चलते लोग उनपर उगली उठाते—'ये जा रहे है देशद्रोही'। खासकर जब कभी वासुदेव चाफेकर से उनका सामना हो जाता, तो उनके देवता ही कूच कर जाते। उन्हे लगता कि अब पुलिस सुरक्षा खोखली है और चाफेकर न जाने कब उनकी छाती पर चढ बैठेगा।

थी। वासुदेव के इन शब्दों ने जैसे उसके कलेजे पर चोट की। पर चोट सहने की आदी मा आखें पोछे आगे बढ़ी और वासुदेव को हृदय से लगाकर बोली, "बेटे! तूने चाफेकर परिवार का नाम उज्ज्वल कर दिया! अब देशद्रोह करने वाले का हृदय इस घटना को याद कर काप उठा करेगा। जीवन और मृत्यु तो अपने वश मे नहीं किन्तु स्वाभिमान से जीना या मरना तो अपने हाथ में है—आज तूने यह सिद्ध कर दिया।"

वासुदेव को प्राय. रोज एक बार थाने बुलाया जाता था। यह उसका दैनिक कार्य ही बन गया था। वह भी निर्भीकता से यू थाने जाता जैसे 'क्लब' जा रहा हो। आज भी वह उसी प्रकार थाने जा रहा था। किन्तु सबका अन्तर्मन कह रहा था कि आज वासुदेव का घर से जाना रोज से अलग है और न जाने क्यों अनिष्ट की कल्पना सब हृदयों को मथ रही थी।

जाने से पहले वासुदेव ने दोनो भाभी, मा व पिताजी के चरण-स्पर्श किए। उसका भी हृदय कुछ भर आया। पर मन कड़ाकर उसने माधव व केशव को गोद मे उठा लिया। बोला, "क्यो रे वानरो! चलना है ससुराल ?"

'ससुराल' का ठीक अर्थ दोनो जानते थे। ऐसे विद्रोही परिवार मे जन्म लेकर भला वे क्यो न तेजस्वी होते। झट केशव ने उत्तर दिया, "जरूर चलेंगे चाचा जी! लेकिन ऐसे नहीं—हम भी दूल्हा बनकर जाएंगे।"

यह उत्तर सुन इस कठिन अवसर में भी सबके होठो पर हसी आ गई। विनोद से वासुदेव ने पूछा, "कैसे दूल्हा बनकर ?"

उत्तर मे हाथों से निशाना बांधते हुए केशव बोला, "ऐसे शूट करके।" माधव ने भी उसकी नकल कर दी और फिर दोनों हस पड़े।

लेकिन अब सब न हंस सके। उदासी की छाया सब चेहरों पर छा गई। वासुदेव ने धीरे से मा को कहा, "मा! ध्यान रखना इनके हाथ कभी सचमुच पिस्तौल न आ जाए।"

का निशाना चूक गया था। वह शायद भय से ही मूर्च्छित हो गया था।

मि० ब्रून ने लपककर वासुदेव से पिस्तौल छीननी चाही, पर उसने उनपर ही निशाना बाध लिया। गोली चल ही जाती अगर पास खड़े पुलिस अफसर मि० कोकजे फुर्ती से वासुदेव की कलाई मरोड़कर पिस्तौल न छीन लेते। यह सब पल-भर मे ही हो गया था। एक अकेले युवक ने सब पुलिस अफसरो के सामने दो बार पिस्तौल का निशाना बाधा—इस अपमान से बौखलाए मि० ब्रून ने सारी झुंझलाहट वासुदेव पर निकाली, "हथकड़ी बेड़ी लगा दो रास्कल चाफेकर को।"

किन्तु वासुदेव दबने वाला न था। सिंह-गर्जना करता हुआ ललकार उठा, "खबरदार! अगर चाफेकर को गाली दी। याद रखो चाफेकर गाली का जवाब गोली से देते आए हैं।"

वासुदेव के कथन की सच्चाई से सब परिचित थे। उसी क्षण उसकी तलाशी ली गई। उसके थैले से कुछ कारतूस, एक चाकू आदि प्राप्त हुए।

उसी समय वासुदेव को बन्दी बनाकर जेल ले जाया गया। जाते-जाते भी वह पाडु की ओर आग्नेय नेत्रो से देखता गया। उसे अफसोस था कि उसका निशाना चूक गया।

पुलिस को दिए गए अपने बयान मे वासुदेव ने साहसपूर्वक स्वीकार किया, "मैंने अपने देशभक्त भाई दामोदर से द्रोह करने वाले देशद्रोही द्रविड भाइयो की हत्या की। मेरा उद्देश्य स्पष्ट था—एक, देशद्रोहियों को दण्ड देना ताकि भविष्य में कोई देशघातक ऐसी हिम्मत न कर सके। दूसरा उद्देश्य था—अपने भाई बालकृष्ण के विरुद्ध गवाही देने के बजाय स्वाभिमान पूर्वक भाई के साथ-साथ फांसी चढ़ना। मेरे दोनो उद्देश्य पूरे हुए—अब मुझे पूर्ण संतुष्टि है।"

"अब तो संतुष्ट हो न तुम?" विक्षिप्त से बाबा ने घर पहुंचने

ही पत्नी को उलाहना दिया।

अन्नपूर्णा शोक-संतप्त-सी बैठी थी। अश्रुपूर्ण आंखें पोंछ उसने पति की ओर देखा—तीन युवा पुत्रों की फांसी का सदमा उनके अणु-अणु पर अंकित था। पति के उपालंभ का अर्थ वह समझ गई। वह नहीं चाहते थे कि वासुदेव भी भाइयों के रास्ते पर जाए। किन्तु मां अपने छोटे पुत्र के मन की घोर यन्त्रणा को भी अनुभव करती थी। वह नहीं चाहती थी कि वासुदेव आजीवन इस अपमान की आग में जलता रहे कि उसकी गवाही से ही उसके भाई को फांसी मिली थी। और फिर देशद्रोही द्रविड़ों के स्मरण से तो मां का स्वाभिमान भी भभक उठता था। इसीलिए तो उसने ममता को पीछे धकेल पुत्र को बलि-पथ पर बढ़ने दिया था। किन्तु सन्त-से सरल, भावुक पिता को पुत्र-शोक में क्या सान्त्वना दे?

धीरे से बोली, "आज पुत्र शोक में आप अपने ही गाए वे पद भूल गए हैं—

'जीव जीवांत घालावा,
आत्मा आत्म्यांत मिसलावा।'

(अर्थात जीव-जीव में समाए। आत्मा-आत्मा में मिलाए।)

अपने लिए तो सब नर जीते हैं। नरसिंह वही है, जो परार्थ जिए और परार्थ ही मर सके।"

उत्तर में बाबा कुछ न बोले। ठंडी सांस भरकर रह गए। कुछ पल बाद अन्नपूर्णा वेदना-भरे स्वर में बोली, "आज मुझ-सी अभागी कौन है जिसकी गोद तीनों लालों से सूनी हो गई। लेकिन मुझ-सी सौभाग्यशाली भी कौन है जिसने अपनी गोद खाली कर सैकड़ों माओं के बेटों को अत्याचार से बचा लिया! मैं अपने अभाव पर क्यों रोऊं? क्यों न अपने सौभाग्य पर गर्व करूं?"

बाबा ने आंख उठाकर पत्नी की ओर देखा—आंखों में आंसू पर अधरों पर पूर्ण मुस्कान लिए अन्नपूर्णा को आज उन्हें नई ही छवि दिखाई दी। वह पत्नी न लगी—मां भी नहीं—बल्कि जग माता-सी [illegible] लग रही थी! उसके मुख पर वह ज्योतिर्मय आभा थी, जो [illegible]

में तपने के बाद कुन्दन मे होती है। वह धीरे से बोले, "योगियां साधली जीवन कला—तुम सचमुच योगी हो। मैंने जो ज्ञान पढ़ा ही था, उसे तुमने अपने जीवन में उतार लिया है।"

अदालत में बालकृष्ण के साथ-साथ अब वासुदेव, रानाडे और साठे पर भी मुकद्दमा चलाया गया। रानाडे के घर की तलाशी से एक वैसा ही थैला और रिवाल्वर मिला, जैसा वासुदेव के पास था। उसने भी स्वीकार कर लिया कि दूसरे द्रविड भाई पर उसने गोली चलाई थी। साठे ने भी साहस से बयान दिया कि वह दोनों का साथी था और उसका काम था—उन्हें सावधान करना। मुकद्दमे का नाटक चल रहा था। चाफेकर बन्धु अपने दोनों मित्रों के साथ आनन्दपूर्वक खड़े थे। उन्हें मालुम था कि फैसला क्या होने वाला है। अतः जब न्यायाधीश ने घोषणा की—"बालकृष्ण व वासुदेव चाफेकर तथा रानाडे को फांसी और साठे को सात वर्ष का कठोर कारावास," तो चारों मित्रों ने मुस्कराते हुए जयघोष किया—"जय भारत! जय स्वतन्त्रता!"

स्वतन्त्रता का यह जयघोष अदालत की चारदीवारी को भेदता हुआ पूना के जन-जन के द्वार को खटखटा गया। लोग जहां-तहां दबी घुटी आवाज में इस अपूर्व बलिदान की चर्चा करने लगे। उनके स्वर मे पहले पीड़ा उभरती और फिर स्वाभिमान का गर्व! कुछ गिने-चुने सरकार भक्तों को छोड़कर शेष सब लोग चाफेकर परिवार को 'धन्य-धन्य' कहते न थकते! कुछेक साहस कर चाफेकर-निवास पर भी गए। सरकारी दमन-चक्र का इतना आतंक था कि चाह कर भी लोग अपने भाव प्रकट करने चाफेकर भवन न जा सके। जो इष्ट-मित्र इन चारों के परिवारों मे भेंट करने गए, वे उनकी सहिष्णुता व साहस देख विस्मय विमुग्ध रह गए।

चाफेकर-भवन में मां व दोनों बहुएं दोनों बच्चों को लेकर चल पड़ीं। आज आखिरी मुलाकात थी। सोच रही थी उनकी कि भाग्य की

कैसा विचित्र संयोग है कि एक ही वर्ष में बोथरा परिवार के तीनों युवा सदस्यों को बिदा देनी पड़ रही है ? विचारों में खोई तीनों जेल के फाटक तक जा पहुंची। मार्ग में जिसने भी इन्हें देखा, उसने प्रत्यक्ष नहीं तो मन ही मन झुककर इन्हें प्रणाम किया। उनके होठ चाहे सिले थे, पर मन पुकार-पुकार कर कह रहा था—"शत-शत अभिनन्दन मां ! भारत की नारी का मस्तक आज तुम्हारे त्याग की लौ से जगमगा उठा है। पुत्रवती सौभाग्यवती तो अनेक होती हैं, पर पुत्र व सौभाग्य लुटाकर ऐसी धन्य मां व पत्नी अन्य कोई नहीं। इतिहास में एक अनुपम बलिदान का पृष्ठ जोड़ा है तुमने !"

जेल के क्रूर फाटक भी खुलते हुए चीख उठे—निष्प्राण दीवारें भी हिल गईं…पहरेदारों के नेत्र नम हो आए ! धीर पगों से चलती हुई तीनों नारी-रत्न मुलाकात के कमरे के आगे जा पहुंची।

बालकृष्ण और वासुदेव सींखचों के पार आ खड़े हुए। मृत्यु-छाया से घिरे होकर भी उन चेहरों पर कोई छाया न थी। हृदय का उल्लास चेहरे से फूट रहा था। तीनों ने उनकी ओर देखा और मुस्करा दीं। आनन्द से आनन्द मिला—मानो मुस्कान ने मुस्कान को आकृष्ट कर लिया।

मां बोलीं—"बेटे ! पश्चात्ताप तो नहीं हो रहा, निराश या भयभीत तो नहीं ?"

मां के मुख से ये शब्द सुन दोनों भाई चौंके। यही शब्द तो उन दोनों ने उनसे कहने थे। दोनों ने फिर से सबकी ओर देखा—उन आंखों ने आंसू तो बहुत बहाए होंगे किन्तु अब उनमें वैसी ही उजली हंसी भर रही थी जैसे वर्षा के बाद चमकीली धूप होती है !

रुंधे गले से बोला बालकृष्ण, "मां ! जिन भाग्यशालियों को आप सरीखी मां और आपकी बहू जैसी पत्नी प्राप्त हो वे तो आग से जूझने से भी न डरें। फिर हम क्यों निराश या भयभीत होंगे ?"

तीनों भावावेश में कुछ बोल न पाईं। तब वासुदेव बोला, "मां ! दादा और भाभी जी के बारे में सोचकर जरूर चिन्ता होती है। कभी कभी सन्देह भी उठता है कि हमने आप सबके साथ अन्याय तो

किया…"

बीच में ही बात रोकती हुई मा कह उठी, "नही बेटा ! ऐसा भूलकर भी नही सोचना । हम दो-तीन व्यक्तियों से यदि अन्याय भी हुआ हो, तो भी हमसे बडे समाज और देश के प्रति तो यह न्याय है न ! ऐसे महान कार्य में हम क्यो बाधा बनें ?"

रुक्मिणी मूक थी । राधा बडी होने से अपना दुख भूल उनकी वेदना कम करने का प्रयत्न करती रहती थी । उसकी ओर देखते हुए वह बोली, "अनमोल मोती पाने के लिए बहुत गहरे में डूबना पडता है न ! तब भला हम क्यो अधीर हों ?"

आज केशव व माधव गुमसुम ही थे । अबोध बच्चों में जैसे इतने बडे शोक का बोझ उठाया न जा रहा था । केशव मन ही मन सोच रहा था—कैसा विचित्र भगवान है जिसने पहले मेरे पिता जी छीन लिए—अब माधव के पिता जी और हमारे चाचा जी को भी ले जा रहे हैं… "हु…ऐसे भगवान को भी शूट कर देना चाहिए—" बरबस ये शब्द उसके मुह से निकल पडे । सबने चौंककर उसकी ओर देखा ।

"क्या कह रहे हो केशवसिंह जी—" वासुदेव ने अपने प्रिय नाम से पुकारते हुए पूछ लिया ।

नन्हा केशव ज्वालामुखी-सा फट पड़ा, "चाचा जी ! बाबा कहते हैं—भगवान ने आप सबको अपने पास बुला लिया है—मैं पूछता हूं—क्यो बुला लिया है ? क्या उसने दादी मा से पूछा ? बाबा से पूछा…? मा और चाची जी इतना रोते रहते हैं…मेरा भी जी नही लगता—माधव आपको पुकारता रहता है…क्यो साले भगवान ने आपको बुला लिया—मैं उसको भी शूट कर दूगा ।" कहते-कहते केशव फूट-फूट कर रो पड़ा—उसके साथ ही माधव भी रोने लगा ।

सब हतप्रभ-से मौन रह गए । कौन जवाब दे…? क्या जवाब दे ? शायद स्वयं भगवान भी इसका जवाब न ढूढ पाते और चुपचाप नन्हे हाथों की गोली के आगे खड़े हो जाते ।

आसू पोंछते हुए राधा व रुक्मिणी ने अपने बेटों को सीने से लगा लिया…मुलाकात के ये अन्तिम क्षण वेदना से भारी हो चले ।

वातावरण की गंभीरता को हटाते हुए बालकृष्ण हँसते हुए बोला, "माँ ! केशव तो भैया से भी बढ़कर निकलेगा। कैसा फायर-ब्राण्ड है !"

माँ भी मुस्करा दी, "हाँ, मुझे भी तो कभी-कभी परेशानी हो जाती है कि इस नन्हे ज्वालामुखी को कहाँ सम्भालूँ ? बिल्कुल दामोदर जैसा प्रचंड है।" कहते-कहते माँ ने बड़ी ममता से केशव को गोद में ले लिया।

माधव ने देखा—हर बार भैया ही बाजी मार लेता है। झटपट आगे बढ़कर बोला, "पिता जी ! मैं भी शूट करूँगा अपनी पिस्तल से..." उसकी बात पर सब खिलखिला पड़े। माँ ने उसे भी गोद में लिया और प्यार करने लगी। बालकृष्ण ने सींखचों से हाथ बढ़ाकर माधव की हथेलियाँ कसकर पकड़ लीं। उस एक क्षण में उसके नेत्र रुक्मिणी से जा मिले...दो हृदयों में एक ही तड़प—एक ही कसक तड़पा रही थी। बालकृष्ण धीरे से बोला—"घबरा रही हो रुक्मिणी ?"

उत्तर में उदास मुस्कान से वह बोली, "नहीं, घबराई तो नहीं। पर एक ही दुःख है कि भगवान ने हमें भी बलिदान होने के लिए क्यों न चुन लिया ! काश आपके संग एक फन्दा मेरे लिए भी बना होता !"

बालकृष्ण के पास इसका कोई उत्तर न था। किन्तु वासुदेव ने आखिरी चुटकी ली—"इसका उपाय मैं बता सकता हूँ भाभी !"

"क्या ?" दोनों कौतूहल से अपने देवर की ओर देखने लगीं।

"बड़ा आसान उपाय है। जरा दिन चौराहे पर पिस्तौल से किसी 'ललमुँहे' को स्वर्ग यात्रा करवा दो—बस, आपकी भी सीट बुक हो जाएगी।"

वासुदेव की बात पूरी होते-होते सब खिलखिला पड़े। तभी माँ ने डाँटकर कहा, "ठहर, शैतान ! अब मुझसे मेरी बहुएँ भी छीनना चाहता है ?—रहने दे अपना पाठ !"

माँ की मीठी झिड़की पर हँसते-हँसते भी दोनों की आँखों में आँसू आ गए। इसी हँसी-खुशी के वातावरण में झटपट माँ ने उन्हें प्यार किया और विदा भी कर दी। सम्भवतः सब मन ही मन जान

गए थे कि अब और बात हुई तो न जाने कब फिर मन का बाँध टूट जाए !

एक-एक कर दिन बीत रहे थे—हर दिन एक चोट करता आता—हर रात अन्धेरे को और गहरा कर जाती। हृदय के बन्धन भी कैसे होते हैं'''बेशक जेल की कोठरी में वे बन्दी थे पर घर में सबको आश्वासन था कि वे जहा भी है, जीवित है—दोनों ओर स्नेह का तार उस दूरी को जोड़े हुए था। किन्तु मृत्यु ? आह ! यह कल्पना ही हृदय वेधी है कि मेरा प्रियजन अब इस धरती पर कहीं भी नहीं ! जीवन बहुत बड़ी आशा है तो मृत्यु उससे भी बड़ी निराशा !

इन दिनो कितनी बार दोनों बहुओं ने छुप-छुपकर ईश्वर से मागा—'हमें मृत्यु दे दो ! किन्तु मुहमागी मृत्यु कहा मिलती है ? कभी-कभी छटपटाकर दोनो खाना-पीना छोड़ मूर्तिवत् पड़ी रहती। *उनके जीवन में ऐसा बिखराव आ गया था, जो सभालने पर और भी* बिखर-बिखर जाता।

मा से उनकी मनोदशा छुपी न थी। उसे तो एक ही साथ दो मोर्चों पर लड़ना पड़ रहा था। एक ओर अपने दग्ध हृदय को शान्त करती, दूसरी ओर वृद्ध पति व बहुओं को सभालती। फांसी को अब एक दिन शेष था। सायंकाल पूजा-गृह में जब सब एकत्रित हुए, तो कल की भयावनी छाया ने मानो सबको ग्रस लिया था। उखड़े-उखड़े मन और टूटे-फटे स्वर में सबने सान्ध्या-प्रार्थना की। बाबा जब उठ कर बाहर चले गए, तो मा ने अत्यन्त स्नेह से दोनों बहुओं को पास बिठाकर कहा, "बेटी ! तुम्हारी व्यथा मुझसे अज्ञात नहीं। परन्तु एक बात बताओ—हमारे देखते-देखते इस वर्ष कितने पूनावासी प्लेग का शिकार बन मृत्यु को प्राप्त हुए। उन्हें उनके प्रियजनों का ढेरों धन, भरपूर प्यार कोई भी रोक न सका। पल-भर के लिए तुम सोच लो, अगर मेरे लाल भी प्लेग की चपेट में आ जाते, तो सर्वस्व लुटा-कर भी क्या तुम उन्हें लौटा सकती ?"

दोनों बहुए अवाक्-सी मा का मुंह देखने लगी। ऐसी असह्य कल्पना मा कैसे कर पाई है—इसी विचार से दोनो हतुबुद्धि रह गई।

मा फिर कहने लगी, "बेटा ! गीता मे हम जो दोहराते रहते है कि शरीर तो वस्त्र के समान बदलता रहता है और आत्मा ही अजर अमर है—उसकी सत्यता आज ही तो परखी जा रही है। जब जीवन-मृत्यु पर हमारा वश नहीं—तब ऐसी गौरवशाली मृत्यु जो मेरे पुत्रों को प्राप्त हो रही है—इसपर हम क्यो दु.ख मनाए ?"

राधा को लगा जैसे मा नही दामोदर सामने खडा हो—रुक्मिणी की आखो के आगे बालकृष्ण आ खडा हुआ। दोनो को अपनी मूढता व भावुकता पर ग्लानि अनुभव हुई। लज्जा से सिर झुकाए दोनों मा के चरण छूकर बोली, "मा, हमे क्षमा कर दो···हमसे सचमुच भूल हुई।"

उमडते आमुओ को रोकते हुए मा ने दोनो को हृदय से लगा लिया, "बेटी ! मेरी तो अब तुम बेटी ही नही बेटे भी हो। जिस नौका को वे मझधार मे छोड़ गए है, उसे हम बूढे-बूढी के अशक्त हाथ नही पार लगा सकते। उसे तो तुम्हारा ही सबल सहारा चाहिए।"

"नहीं मा ! अब यह भूल दुबारा कभी न होगी। हम भूल गई थी। अपने ही मुख व स्वार्थ मे कर्तव्य-मार्ग से भटक गई थी—अब समझी—भावना की धरती से कर्तव्य का अम्बर बहुत ऊचा होता है—और उस उच्चाकाश मे हमारे सम्मुख प्रकाश-स्तम्भ बनकर आप खडी है मा !"

इन शब्दो के साथ बहुओ के मुख पर दृढता की आभा देख मां ने सन्तोष की सास ली। उसे लगा अब उसकी तपस्या फलीभूत हुई। जिस बलिदान-यज्ञ मे उसके पुत्रों ने समिधारूप मे अपना जीवन-दान दिया था, आज उसमें उनकी भी आहूति पड गई है ! मा सन्तुष्ट थी··· आश्वस्त थी···सामने रखे समर्थ रामदास के चित्र को देख धीरे-से बोली, "भगवान् ! तुमने ठीक कहा है–सर्वस्व होम किए विना राष्ट्र देवता प्रसन्न नहीं होते···लो, आज मैने अपना सब कुछ होम कर दिया···वे मृत्यु-यज्ञ की समिधा बने, तो हम जीवित-मृत्यु मे

अपना सब कुछ होम कर रहे हैं…स्वीकारो। राष्ट्र देव! स्वीकारो… हमारा यज्ञ…" और तीनों नारियां नतमस्तक हो गईं।

"मां! मेरी क्षमा-याचना भी स्वीकारो! तुम्हारा अपराधी मैं हूं—" किसीका वेदना-व्यथित गंभीर स्वर सुनाई दिया। चौंककर तीनों ने आंखें खोलीं। देखा—सामने लोकमान्य तिलक खड़े थे। बहुओं ने शीघ्रता से उठकर प्रणाम किया और चली गईं।

मां उठीं और स्नेह विगलित स्वर में बोलीं, "ऐसा लोकमान्य पुत्र पाकर मेरा अहोभाग्य है बेटा! तुम तो उनके गुरुदेव थे न! उन्हें सन्मार्ग दिखलाने का गौरव है तुम्हें! उस गुरु-मन्त्र को अपराध न कहो पुत्र!"

सदा गंभीर रहने वाले तिलक आज अपनी गंभीरता भूल मां के सम्मुख बालक की तरह बिलख उठे, "मां! मैंने सब कुछ दांव पर लगा दिया फिर भी अपने प्रिय दामोदर, बालकृष्ण को न बचा सका। और वह अभिमन्यु-सा वासुदेव तो स्वयं ही उनके जाल में जा फंसा… तीनों की स्मृति मुझे पागल कर रही है मां! न जाने आपने कैसे धैर्य रखा है?"

उत्तर में मां की आंखें बरसने लगीं…कुछ पल वहां मूक रुदन छाया रहा। धीरे-धीरे संयत होने पर तिलक ने बताया कि स्वयं वह भी अंग्रेज विद्वान मैक्समूलर के आग्रह पर सात महीने पश्चात् जेल से मुक्त हुआ था। बहुत देर बातें होती रहीं। इसी बीच बाबा भी आ बैठे थे। उनकी करुण दशा देख तिलक का हृदय वेदना से तड़प उठा। किन्तु मां का अडिग साहस देख वे विस्मित थे। आज पहली बार मां व बाबा को अपने दुःख का संवेदनशील श्रोता मिला था। इस लंबी वार्ता में तीनों की आंखें कई बार गीली हुईं और कई बार गर्व से छाती फूल उठी। जाने से पहले लोकमान्य ने झुककर मां व बाबा के चरण स्पर्श किए और रुंधे कंठ से कहने लगे, "इस गौरवशाली बलिदान का श्रेय न मुझे है न उन्हें है—बल्कि सचमुच में इसका श्रेय आपको और आपकी बहुओं को है! गीता पढ़ना सरल है मां! पर उसे वास्तविक जीवन में उतारना बहुत ही कठिन है! एक बार मरना

संभव है किन्तु इस प्रकार मरण को हृदय से लगाए हुए जिन्दा रहना बहुत असभव है। पर आपने वही कर दिखाया…धन्य है आप !"

धीरे-धीरे पग उठाते तिलक चले गए। सब अभिभूत-से खड़े उस महापुरुष को देखते रहे !

गहन अधेरी रात ! सन्नाटा भी भयभीत-सा दुबका पड़ा था। ऐसे क्षणों मे, सावरकर-निवास के एक कमरे मे एक किशोर बैठा सिसक रहा था…उसके सामने अखबार था—जिसमे तीनो चाफेकर बन्धुओं और उनके मित्रो के चित्रो सहित उनकी फांसी की खबर छपी थी—जितनी बार वह किशोर उधर देखता, उतने ही वेग से उसकी रुलाई फूट पडती। न जाने कितनी देर वह अश्रु-जल से उन चित्रों को पखारता रहा। धीरे-धीरे उसने स्वय को सयत किया, लेखनी उठाई और लिखने लगा :

"तरीजे गजेन्द्रशुडेने उपटिले
श्रीहरि साठी नेलें
कमल फूल ते अमर ठेलें
मोक्षादाते पावन !
अमर होय ती वंशलता
निर्वश जिचा देशा करिता
दिगन्ति पसरे सुगधिता
लोकहित परिमलाची !"

(अर्थात्) अनेक फूल खिलते है और सूख जाते हैं। किन्तु हाथी की सूंड द्वारा भगवान के श्री चरणो मे समर्पित पुष्प अमर हो जाता है। इसी प्रकार ये तीनों जीवन-पुष्प कमल पुष्प की तरह श्रीहरि यानी मातृभूमि के चरणो मे समर्पित होकर अमर हो गए। वह मां धन्य है, जिसने अपनी गोद के तीनों लाल अर्पण कर अपने वंश को निर्वंश कर लिया। वस्तुतः वह वशबेल मिटी नहीं, अपितु खूब फूली-फली है। इसीलिए तो उसकी अमर सुगन्ध देश-देशांतर को सुगन्ध से भर रही

है और सदा भरती रहेगी ।"

अपनी ही लिखी कविता को बार-बार पढता हुआ किशोर फिर से रो पडा। उसकी सिसकियों ने पास के कमरे से पिता को उठा दिया। वे व्याकुल-से आए—किशोर को हृदय मे लगाकर पूछा, "विनायक क्या हुआ ? क्यों रो रहे हो ?"

उत्तर मे विनायक ने समाचारपत्र की ओर उगली की। पिता ने देखा—आसुओं से धुली चाफेकर भाइयों की तसवीर ! फिर बेटे के हाथ मे पकडा कागज ! कविता पढते ही उनके नेत्रों से भी टप-टप आसू गिरने लगे। पुत्र को हृदय से लगाकर बोले, "बेटे ! राष्ट्रदेव को प्रसन्न करना सरल कार्य नहीं। रूठी हुई स्वतन्त्रता को लौटाने के लिए एक क्या अनेक जीवन-पुष्प भेंट करने होंगे। धन्य है चाफेकर बन्धु ! धन्य, धन्य है वह बलिदानी परिवार ! यह तो गर्व की बात है विनायक ! आसू क्यों बहाते हो ? ऐसे नरसिंहो को अश्रु-कण नहीं रक्त-कण भेंट करने चाहिए।"

तुरन्त आसू पोछ दृढ कंठ से विनायक सावरकर बोल उठा, "बाबा ! इनके पवित्र बलिदान की शपथ ! मैं अपने जीवन का अणु-अणु मातृभूमि के अर्पण कर इनके चलाए यज्ञ को पूर्ण करूगा।"

० ० ०